सुबोध काव्यमाला

सम्पादक
रामलोचनशरण बिहारी

सुबोध-काव्यमाला—९

पार्वती-मंगल

[सरल टीका-सहित]

कल्यान काज उछाह ब्याह सनेह सहित जो गाइहैं ।
तुलसी उमा-संकर प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहैं ॥

टीकाकार

श्री अच्युतानन्द दत्त

'बालक' सं० सम्पादक

पुस्तक-भंडार—लहेरियासराय और पटना

प्राक्कथन

आज से प्रायः साढ़े तीन सौ वर्ष पहले स्त्रियों के लिये एक हार तैयार किया गया। वह हार इन लौकिक मणि-मानिकों और हीरा-मोतियों से गुँथा नहीं है, उसमें अलौकिक मणि हैं। उस हार से केवल पहननेवाले की शोभा क्षणकाल के लिये नहीं बढ़ती, वरन् एक बार धारण करने मात्र से उसके लोक और परलोक दोनों ही सदा के लिये बनते हैं। अतएव वह हार तीनों लोकों की शोभा का सार है। उसके पहनने से किसी प्रकार का भार भी नहीं जान पड़ता है और न उसमें चोर-लुटेरों का ही डर है। कोई उसे बाँट भी नहीं सकता। आज-तक उस हार का ओप और मूल्य एक-सा रहा है और भविष्य में भी कभी उसमें फर्क नहीं आवेगा।

कवि की बुद्धि सोहै। अतएव उसने अपने समाज—नारी-जाति के लिये—जो मंडनाभरण को जी-जान से चाहती है—ऐसा अपूर्व मणिमय हार प्रस्तुत किया, जिसमें गौरी-शंकर के गुण-गण ही मणि-मानिक हैं। उसके बनाने में प्रचुर परिश्रम किया गया है और कवि की इच्छा है कि प्रत्येक नारी उसे गले में पहनकर अपने लोक और परलोक दोनों बनावे।

अच्छा वह कवि कौन है? उस कवि का परिचय देने के लिये विशेष आयास नहीं करना होगा। वह आज भारत के कोने-कोने में—राज-महल से लेकर दीन की कुटी तक में—एक रूप से व्याप्त है। यही नहीं, उसकी कीर्त्ति-कौमुदी देशान्तरों में भी फैल रही है। जैसे भारतीय भावुक भक्त उसके विनय के पद गा-गाकर आनंद-विभोर हो जाते हैं, वैसे ही इंगलैंड के पादरी भी गिर्जाघरों में उसके पदों के अनुवाद ईश-

प्रार्थना के समय में गाते हैं। उसका 'रामचरितमानस' वेद और बाइबिल, तथा पुराण और कुरान के समान समादृत हो चुका है। उस कविचन्द्र की चन्द्रिका से हिन्दी-साहित्य का नभोमंडल नित्य आलोकित रहेगा। उसकी कविता-मंजरी के मकरंद से भावुक चञ्चरीक पटल चिर काल तक मुग्ध बने रहेंगे।

अब यह समझने में विशेष अड़चन न होगी कि वह कवि राम-पद-पद्म पराग के चञ्चरीक गौरी-शंकर के प्रिय भक्त हिन्दी-साहित्य-गगन के विमल शरद-राकेश गोस्वामी तुलसीदासजी है। इनके विषय में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है। अपने 'रामचरितमानस' और 'विनय-पत्रिका' से ये अपने स्थितिकाल से ही आदि कवि महर्षि वाल्मीकि का अवतार समझे जाते हैं।

आज-कल के कुछ लोगों की राय में नारी-जाति के एकमात्र निन्दक—गोस्वामीजी ने कम-से-कम स्त्रियों के उपकारार्थ एक हार तो गूँथ दिया! नारी-हित की हामी भरनेवालों को इस परिश्रम के लिये कम-से-कम एक बार भी उन्हें धन्यवाद दे देना चाहिये!

उस हार का नाम 'पार्वती-मंगल' है। इस ग्रंथ में ९० गाने योग्य पद हैं, जिनमें ७४ पद हंसगति और १६ पद हरिगीतिका छन्दों में हैं। इस ग्रन्थ की रचना लगभग १६४३ संवत् में हुई है, क्योंकि पं० सुधाकर द्विवेदी की गणना से उसी संवत् में 'जय' संवत्सर आता है। कवि कहते भी हैं—

'जय संवत् फागुन सुदि पाँचै गुरु दिन।'

'रामचरितमानस' की रचना हो रही थी। 'विनय-पत्रिका' का भी आरंभ हो चुका था। सतसई की रचना पूरी हो चुकी थी। गोस्वामीजी ही लिखते हैं—

संवत् सोरह सै इकतीसा।
करौं कथा हरिपद धरि सीसा॥—रामचरितमानस

संवत सोरह सै इकतीसा जेठ सुक्ल छठ स्वाती।
तुलसिदास यह बिनय लिखतु हैं प्रथम अरज की पाँती॥
भजु मन सियाराम दिन-राती

—गोस्वामीजी रचित प्रथम पद (विनय)

अहिरसना धनधेनु रसै, गनपतिद्विज गुरुवार।
माधव सित सिय-जन्मतिथि, सतसइया अवतार॥

—तुलसी-सतसई

फागुन का महीना था। खूब धूमधाम से शिवरात्रि का महोत्सव मनाया गया। चार दिनों तक धूमधाम रही। स्त्रियों ने गोस्वामीजी से प्रार्थना की कि आप जगदुपकारी महात्मा हैं। हमलोगों के समझने और गाने योग्य कुछ पद दे दीजिये जिनसे हमारा कल्याण हो। गोस्वामी ने उन्हीं की प्रार्थना से दो मंगलों की रचना की। उनमें एक तो यही 'पार्वती-मंगल' है और दूसरा 'जानकी-मंगल'। भाषा की सरलता कि इनमें खूब ध्यान रक्खा गया है। ये दोनों मंगल स्त्रियों के लिये लिखे गये हैं। छन्द भी वही और लय भी वही—जिन्हें स्त्रियाँ प्रसन्नता-पूर्वक आसानी से गा सकती हैं। दोनों मंगलों के अंत में गोस्वामीजी क्रम से लिखते हैं—

कल्यान काज उछाह ब्याह सनेह सहित जो गाइहैं।
तुलसी उमा-संकर प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहैं॥

—पार्वतीमंगल

उपबीत ब्याह उछाह जे सिय-राम-मंगल गावहीं।
तुलसी सकल कल्यान ते नर-नारि अनुदिन पावहीं॥

—जानकी-मंगल

गोस्वामीजी अपने लिये ये दो मंगल लिखते तो अवश्य ही अन्त में 'सीताराम' की भक्ति पाने के लिये प्रार्थना करते; परन्तु उन्होंने स्त्रियों के लिये लिखे हैं। अतएव वैसी प्रार्थना नहीं है। इससे तथा भाषा-

विचार की कसौटी पर कसने से इन दोनों ग्रंथों की रचना अन्य कवि की मान लेना हमारी राय में कष्ट कल्पना ही है।

गोस्वामीजी की राय में रामजी के उपासकों के लिये शिव-भक्त होना आवश्यक है। उन्होंने रामचरितमानस में कहा भी है—

बिनु छल बिस्वनाथ-पद नेहू।
रामभगत कर लच्छन एहू॥

इस प्रतिज्ञा का निर्वाह गोस्वामीजी ने अपने प्रायः सभी ग्रंथों में किया है। रामचरितमानस में भी शिवचरित खूब वर्णित हुआ है। वह चरित सुनाकर याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी से कहते हैं—

"प्रथम कहा मैं सिवचरित, बूझा मरमु तुम्हार॥"

—रामचरितमानस

इसीसे रामचरितमानस और पार्वतीमंगल के भाव परस्पर टकरा जाते हैं। कुछ उदाहरण लीजिये—

जब तें उमा सैल गृह जाई।
सकल सिद्धि संपति तहँ छाई॥

—रामचरित०

मंगलखानि भवानि प्रगट जब तें भइ।
तब तें रिधि सिधि सम्पति गिरिगृह नित नइ॥

—पार्वतीमंगल

त्रिकालग्य सर्बग्य तुम, गति सर्बत्र तुम्हारि।

—रामचरित०

तुम तिभुवन तिहुँकाल बिचार बिसारद।

—पार्वती०

कछु दिन भोजन बारि बतासा।
किए कठिन कछु दिन उपबासा॥
बेल पात महि परै सुखाई।
× × ×

पुनि परिहरे सुखाने परना।
उमा नाम तब भयउ अपरना॥

—रामचरित०

कंद मूल मल असन कबहुँ जल पवनहिं।
सूखे बेल के पात खात दिन गवनहिं॥

× × ×

नाम अपरना भयउ परन जब परिहरे।

—पार्वतीमंगल

जस दूलह तस बनी बराता।

—रामचरित०

बर अनुहरति बरात बनी.........।

—पार्वतीमंगल

इतना होने पर भी रामचरितमानस में वर्णित गौरी-शंकर के विवाह और पार्वती-मंगल में कुछ अन्तर है। मानस में लिखा है कि सती ने दक्ष-यज्ञ में शरीर त्याग कर हिमालय के घर में जन्म ग्रहण किया। नारद के उपदेश से पार्वती ने बड़ी तपस्या की। सप्तर्षियों ने उनकी परीक्षा ली। शिवजी समाधि में लीन थे। तारकासुर के उपद्रव से त्रस्त देवताओं को शिव-पुत्र की आवश्यकता थी। इससे पार्वती का शिव के साथ विवाह होना आवश्यक था। स्वयं भगवान् श्री रामचन्द्र ने भी शिव को आदेश दे रक्खा था—"पार्वती ने तुम्हारे लिये बड़ी तपस्या की है। तुम उससे ब्याह कर लो।" इधर देवताओं ने शिव की समाधि भंग करने के लिये कामदेव को भेजा और वह वहीं जल मरा। रति की करुणा से शिवजी ने उसे वरदान दिया कि तुम आगे चलकर कृष्ण के पुत्र के रूप में अपने पति को पाओगी। इसके बाद गौरी-शंकर का विवाह हुआ। कुमार कार्तिक की उत्पत्ति हुई और उन्होंने तारकासुर को मार गिराया।

पार्वतीमंगल में यह घटना उसी प्रकार लिखी है, जिस प्रकार

महाकवि कालिदास ने अपने कुमार-संभव महाकाव्य में इस घटना का वर्णन किया है। मंगल में गोस्वामीजी स्थान-स्थान पर कवि-कुलगुरु कालिदास का अनुधावन करते दिखाई देते हैं—

विकार-हेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।

—कुमार० सर्ग १

ते धीर अछत विकार हेतु जे रहत मनसिज बस किये।

—पार्वती-मंगल

स्वयं विशीर्ण द्रुमपर्णवृत्तिता परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः॥

—कुमार० सर्ग ५

× × × ×

सूखे बेल के पात खात दिन गवनहिं॥

× × × ×

नाम अपरना भयउ परन जब परिहरे।

—पार्वती-मंगल

न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्।

—कुमार० सर्ग ५

रतन कि राजहिं॥

—पार्वती-मंगल

अथो वयस्यां परिपार्श्ववर्तिनीं विवर्तितानञ्जननेत्रमैक्षत॥

—कुमार० सर्ग ५

सुनि प्रिय वचन सखी-मुँह गौरि निहारेउ॥

—पार्वतीमंगल

द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां समागम-प्रार्थनया पिनाकिनः।
कला च सा कान्तिमती कलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी॥

—कुमार० सर्ग ५

जो सोचहि ससि-कलहिं सो सोचहि रौरहि॥

× × × ×

—पार्वती०

वधूदुकूलं कलहंसलक्षणं गजाजिनं शोणित-बिन्दुवर्षि च ॥

—कुमार० सर्ग ५

गज-अजिन दिव्य दुकूल जोरत सखि हँसब मुँह मोरि कै ॥

—पार्वती०

इति द्विजातौ प्रतिकूलवादिनि प्रवेपमानाधरलक्ष्य कोपया।
विकुंचित भ्रूलतमाहिते तया विलोचने तिर्यगुपान्तलोहिते ॥

× × × ×

निवार्यतामालि किमप्ययं बटुः पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः ॥

—कुमार० सर्ग ५

करन कटुक बटु बचन बिसिष सम हिय हये।
अरुन नयन चढ़ि भृकुटि अधर फरकत भये ॥
बोली फिरि लखि सखिहि काँप तनु थरथर।
आलि बिदा करु बटुहिं बेगि बड़ बरबर ॥

—पार्वती०

न केवलं यो महतोपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ।

—कुमार० सर्ग ५

सिव-साधुनिंदक मंद अति जो सुनै सोउ बड़ पातकी ॥

—पार्वती०

अद्य प्रभृत्यनवताङ्गि तवास्मि दासः
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ।

—कुमार० सर्ग ५

हमहिं आजु लगि कनउड़ काहु न कीन्हेउ ॥
पारवती तप-प्रेम मोल मोहि लीन्हेउ ॥

—पार्वती०

अथ विश्वात्मने गौरी संदिदेश मिथः सखीम् ।
दाता मे भूभृतांनाथ प्रमाणी क्रियतामिति ॥

—कुमार० सर्ग ६

परि पायँ सखिन्ह हि कहि जनायो आपु बाप अधीनता ॥

—पार्वती०

यस्य चेतसि वर्तेथाः स तावत्कृतिनां वरः ।
किं पुनर्ब्रह्मयोनेर्यस्तव चेतसि वर्तते ॥

—कुमार० सर्ग ६

सुमिरहिं सकृत तुम्हहिं जन तेइ सुकृती वर ।
नाथ जिन्हहिं सुधि करिय तिन्हहिं सम तेइ हर ॥

—पार्वती०

आर्याप्यरुन्धती तत्र व्यापारं कर्तुमर्हति ।
प्रायेणैवं विधौ कार्ये पुरन्ध्रीणां प्रगल्भता ॥

—कुमार० सर्ग ६

अरुंधती मिलि मैनहि बात चलाइहि ।
नारि कुसल यहि काज काज बनि आइहि ॥

—पार्वती०

फिर भी गोस्वामीजी अपने पात्रों की मर्यादा का खूब ही ध्यान रखते हैं । जहाँ महाकवि कालिदास ने 'असम्भृतं मण्डनमङ्गयष्टेरनासवाख्यं करणं मदस्य' से आरंभ करके युवती पार्वती के अंग-प्रत्यंग (नख-शिख) का वर्णन करते हुए हिमालय के मन में पार्वती के लिये योग्य वर प्राप्ति की चिन्ता उपस्थित की है, वहाँ गोस्वामीजी ने इतना ही लिखकर जगन्माता पार्वती के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा दिखलाई है—

कुँवरि सयानि बिलोकि मातु-पितु सोचहिं ।
गिरिजा जोग जुरहि बर अनुदिन लोचहिं ॥

इसके बाद नारद का आना और उसके द्वारा पार्वती को हिमवान्

के आश्रम में समाधि लगाये हुए शिवजी की सेवा का आदेश देने का वर्णन किया गया है। पार्वती जाकर शिव की सेवा करने लगीं। जितेन्द्रिय शिव का इससे कुछ भी विकार पैदा न हुआ। इसके बाद महाकवि कालिदास ने तारकासुर का उपद्रव तथा देवताओं के ब्रह्मा से स्तुति पूर्वक आत्मदुःख-निवेदन एवं कामदेव-भस्म तथा रति-विलाप का बड़ा लम्बा-चौड़ा वर्णन किया है। गोस्वामीजी ने पार्वती-मंगल में तारकासुर का नाम भी नहीं लिया है और संक्षेप में ही कामदेव-भस्म तथा रति-दुःख की कथा का वर्णन कर दिया है। हाँ, इन्होंने मानस में इसका कुछ विस्तर वर्णन अवश्य ही किया है।

फिर शिवजी वहाँ से अदृश्य हो जाते हैं। कुमारी पार्वती को इससे बड़ा दुःख होता है। उनका परिवार घर लौट चलने के लिये उनसे अनुरोध करता है। पार्वती का मन शिव-प्राप्ति के लिये विकल है। वे तपस्या और प्रेम में अपने को खपा देना चाहती हैं। वे सखियों के साथ वन में तपस्या को चली जाती हैं। पुराणों में लिखा है कि पार्वतीजी सखियों के साथ भाद्र शुक्र तृतीया (तीज) को तपस्या करने गई थीं। उस तिथि का नाम 'हरितालिका' है और स्त्रियाँ उस दिन व्रत रखती हैं। यथा—'आलीभिर्हरिता यस्माद्धरितालीति उच्यते।' परन्तु इस तिथि का उल्लेख न तो कालिदास ने ही किया है और न गोस्वामीजी ने ही।

तपस्विनी पार्वती की तपस्या का वर्णन दोनों महाकवियों ने खूब ही किया है। गोस्वामीजी की गिरिजा की सराहना मुनिवर और मुनिवधू करते हैं। महाकवि कालिदास की पार्वती की प्रशंसा भी सिद्धयोगीश्वर खूब ही करते हैं। तदनन्तर पार्वती की प्रेम-परीक्षा के लिये शिवजी स्वयं बटु का वेष धारण कर उनके पास जाते हैं और पार्वती के अभीप्सित पति की भर पेट शिकायत कर उनके मन को चंचल करना चाहते हैं। पार्वती का मन नहीं डिगता। वे बटु को खूब फटकारती हैं—

बोली फिरि लखि सखिहि काँप तनु थरथर।
आलि बिदा करु बटुहिं बेगि बड़ बरबर॥
कहुँ तिय होहिं सयानि सुनहिं सिख राउरि।
बौरेहि के अनुराग भयउँ बड़ि बाउरि॥
को करि बाद-बिवाद बिषाद बढ़ावइ।
मीठ काह कबि कहहिं जाहि जोइ भावइ॥

बहुत क्या, शिव-साधु की निंदा सुनना भी पाप है। कालिदास की शैलाधिराज-तनया यह कहकर आवेश से ज्योंही कुटी के भीतर जाने लगीं कि शिवजी प्रत्यक्ष हो उनके आगे खड़े हो गये। बस, वे जहाँ-की-तहाँ खड़ी रह गईं—'न ययौ न तस्थौ।' गोस्वामीजी ने लिखा है कि पार्वतीजी के क्रोधमय वचन सुन तथा उनका अविचल प्रेम देख शिवजी तुरत इस वेष में उनके आगे प्रकट हो गये—

सुन्दर गौर सरीर भूति भलि सोहइ।
लोचन भाल बिसाल बदन मन मोहइ॥

तब—

सैल-कुमारि निहारि मनोहर मूरति।
सजल नयन हिय हरष पुलक तन पूरति॥
पुनि पुनि करइ प्रनाम न आवत कछु कहि।
देखौं सपन कि सौंतुख ससिसेखर सहि॥
सफल मनोरथ भयउ गौरि सोहइ सुठि।
घर तें खेलन मनहुँ अबहि आई उठि॥

फिर महादेवजी प्रसन्न होकर कहते हैं—"हे गौरी, तुमने हमें तप और प्रेम के मोल से खरीद लिया है। इस समय तुम जो कहोगी, हम अविलंब वही करेंगे।" इसपर पार्वतीजी ने सखियों के द्वारा कहलाया है—"इस समय मैं पिता के अधीन हूँ, (क्योंकि स्त्रियाँ कौमार्य में पिता

के, यौवन में पति के और बुढ़ापे में पुत्र के अधीन रहती हैं।) आप उन्हीं से मेरी याचन करें।" पार्वती की इस व्युत्पन्नता पर शिवजी और प्रसन्न होते हैं तथा वहाँ से चले जाते हैं। गौरी भी सखियों के साथ घर लौट आती हैं।

महादेवजी सप्तर्षियों को बुलाते हैं। उनके साथ (वशिष्ठ-पत्नी) अरुन्धती भी हैं। शिवजी के आदेश से वे हिमालय के पास जाकर लग्न स्थिर करा लाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र आदि देवता आ जुटते हैं। बारात विदा होकर हिमालय के यहाँ आती है और धूमधाम से पार्वती का विवाह समाप्त होता है। इस घटना का वर्णन गोस्वामीजी ने प्रायः मानस में वर्णित शिव-विवाह के अनुसार ही किया है।

इस छोटे-से ग्रंथ में यमक, रूपक और उपमादि अलंकारों की भरमार है। स्थान-स्थान पर उनकी छटा मिलेगी। शृंगार, हास्य और भयानक ये तीन रस इसमें आ सके हैं। भाषा के विषय में गोस्वामीजी ने इसमें अवधी का ही आश्रय लिया है। इसमें भी उनकी अमृतनिस्यंदिनी लेखनी का प्रवाह, जहाँ देखिये, वहीं प्रवाहित है।

इस ग्रंथ में हंसगति नाम के छन्द अधिकता से आये हैं। इस छन्द के प्रत्येक चरण में इक्कीस मात्राएँ होती हैं। ग्यारहवीं मात्रा पर विश्राम होता है। मात्रिक छन्द होने के कारण इसमें लघु-गुरु का नियम नहीं रहता, पर अंत में दो लघु रखने से यह श्रुतिमधुर हो जाता है। इसके बाद बीच-बीच में हरिगीतिका छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में अट्ठाईस मात्राएँ होती हैं। अन्त में दो गुरु रहने से यह सुनने में अच्छी लगती है। यही शैली जानकी-मंगल की भी है। कोई-कोई कहते हैं कि जानकी-मंगल की रचना पार्वती-मंगल से पहले की ही है।

गोस्वामीजी ने अपने ग्रंथों में प्रायः दो मुख्य भाषाओं का प्रयोग किया है। अवधी भाषा तो इष्टदेव रामजी की जन्मभूमि अवध की होने के कारण विशेष प्रिय थी। रामचरितमानस, रामलला-नहछू, जानकी-

मंगल, पार्वती-मंगल आदि अवधी भाषा में ही लिखे गये हैं। ब्रजभाषा उस समय के कवियों की वाणी थी। गोस्वामीजी ने उस भाषा में भी कवितावली, हनुमानबाहुक, विनयपत्रिका आदि की रचना की है। किन्तु वे ब्रजवासी नहीं थे, अतः उनकी ब्रजभाषा में भी यत्र-तत्र अवधी का पुट पाया जाता है।

अवधी भाषा में भी अन्य प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग गोस्वामीजी ने बड़ी स्वतंत्रता से किया है। यथा—

जो सोचहि ससिकलहि सो सोचहि रौरेहि।

× × ×

हित लागि कहेउँ सुभाय सो बड़ विषम वैरी रावरो।

उक्त पदों में 'रावरो' शब्द स्पष्ट अवधी नहीं है। वह भोजपुरी का सर्वनाम है। इसका अर्थ होता है 'आपका' या 'तुम्हारा'। 'आप' अर्थ में आनेवाले सर्वनाम 'रउँआँ' का रूप सम्बन्ध कारक में 'राउर', 'रौरे' वा 'रावरो' हो जाता है। गोस्वामीजी ने इस शब्द का बहुत प्रयोग किया है।

अब एक और शब्द पर भी विचार कीजिये। गोस्वामीजी लिखते हैं—

मभरे बनइ न रहत न बनइ परातहि॥

भागने के अर्थ में "पराने" का प्रयोग मैथिली में भी होता है। गोस्वामीजी ने निःसंकोच इन शब्दों को अपनाया है। अपनी भाषा को मधुर बनाने के लिये इन्होंने संस्कृत, अरबी, फारसी आदि भाषाओं के श्रुति-कटु शब्दों को भी सामान्य ध्वनि-परिवर्तन के साथ अपना लिया है। जैसे—

सम्भु = संभु	अर्घ्य = अरघ
राकेश = राकेस	मणि = मनि
लग्न = लगन	निशाना = निसान

इत्यादि।

गोस्वामीजी भाषा को टकसाली बनाने का बड़ा ध्यान रखते हैं।

अवधी के नियमानुसार कर्त्ता के 'ने' चिह्न का प्रयोग उन्होंने कहीं नहीं किया है। वे कुतबन, जायसी इत्यादि की तरह संस्कृत के तद्भव शब्दों का नहीं, वरन् तत्सम शब्दों का ही प्रयोग करते हैं। वे स्थान-स्थान पर मुहावरों और कहावतों का प्रयोग कर भाषा की रोचकता बढ़ा देते हैं। शब्दों को बहुत तोड़ते-मरोड़ते भी नहीं। पार्वती-मंगल में भी मुहावरों का प्रयोग हुआ है। जैसे—

पारस जौ घर मिलइ तौ मेरु कि जाइय॥
सुधा कि रोगिहिं चाहहि रतन कि राजहि॥
सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ॥
मीठ काह कवि कहहिं जाहि जोइ भावइ॥
बौरेहि के अनुराग भइउँ बड़ि बाउरि॥
बर अनुहरति बरात बनी हरि हँसि कहा॥

गोस्वामीजी ने कहीं-कहीं अपने पूर्ववर्ती अन्यान्य कवियों के भावों को स्वतंत्र-रीति से भी अपनाया है।

जब नारदजी हिमवान् से पार्वती की विवाह-चर्चा चलाते हैं वहाँ महाकवि कालिदास पार्वती के मनोभावों का यों चित्रण करते हैं—

एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती॥

नारदजी पार्वती की विवाह-चर्चा करते हैं। बेचारी लजीली पार्वती पिता (हिमवान्) के पास सिर नीचा किये हाथ में लिये हुए लीला-कमल के पत्तों को गिने डालती हैं—एक-दो-तीन-चार..........!!

कुमारी कन्या के मनोभाव का कैसा अच्छा चित्रण है—साथ ही स्वाभाविक भी! गोस्वामीजी ने उस अवसर पर और ही ढंग से काम लिया है। उनकी पार्वती सामान्य बालिका नहीं, साक्षात् जगदम्बा हैं। नारदजी भी आते ही मन-ही-मन उन्हें प्रणाम करते हैं। अतएव अपने विवाह की चर्चा चलने पर गोस्वामीजी की पार्वती ('कुँवरि लागि पितु

कान्ह छाड़ि भइ सोहइ, रूप न जाइ बखानि जान जोइ जोहइ।') पिता के कंधे लगकर खड़ी हैं। उनके रूप को भी जो देखेगा, वही समझ सकेगा। (फिर उनके मनोभावों को कौन समझे—समझने की जरूरत भी नहीं।)

गोस्वामीजी में एक और विशेषता है। वह अपने पात्रों के चरित को अपने ढंग से चित्रित करते हैं। उनकी मर्यादा की रक्षा कहाँ तक होनी चाहिये, इसपर गोस्वामीजी सदैव सावधान रहते हैं—कहीं भी नहीं चूकते।

अपनी प्राणप्रतिमा पुत्री पार्वती के लिये अच्छे वर का पता तो मैना पूछती हैं। यह ठीक, पुत्री के सुख के लिये मातृ-हृदय सर्वदा व्यग्र रहता है। परन्तु नारदजी इसका उत्तर हिमवान् से देते हैं। क्यों? बात यही है कि उनको मर्यादा का पूरा ध्यान है। यती नारद को किसी भी स्त्री से संभाषण पर्यन्त मना है। अतएव गोस्वामीजी ने उनसे इस मर्यादा की रक्षा करवाई है।

पार्वतीजी की यौवनावस्था का वर्णन भी गोस्वामीजी ने इतना ही संकेत पूर्वक कर दिया—'कुँवरि सयानि विलोकि मातु-पितु सोचहीं।' जहाँ महाकवि कालिदास ने पार्वती का वयोवर्णन शृंगारपूर्ण किया है, वहाँ गोस्वामीजी 'जगत मातु-पितु संभु भवानी' का खुल्लमखुल्ला यौवन-वर्णन कैसे करते?

महाकवि बाणभट्ट भी अपने 'पार्वती-परिणय' नाटक में औचित्य की सीमा का उल्लंघन कर गये हैं। कुमारी पार्वती का यौवन देखकर पिता हिमालय को उनके विवाह की चिन्ता होती है—

कुचयुगलं परिणद्धं यथा यथा वृद्धिमेति तन्वङ्ग्याः।
वरचिन्ताहतमनसस्तथा तथा कार्श्यमेति गात्रम्॥

अर्थात् जैसे-जैसे तन्वङ्गी पार्वती के स्तनद्वय बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे

उनके पिता का शरीर, योग्य वर की चिन्ता से, खिन्न होता जाता है!
और भी —

> आभोगशालि कुचकुड्मलमानताङ्ग्याः
> वक्षोऽन्तरालमतिनान्तरित सविरोद्गम।
> अप्यादित नाभि वनतां विपर्ययनलग्नं
> तन्वी समुदजसति काचन रोमरेखा॥

कोई भी भलामानस अपनी पुत्री का इतना नग्न वर्णन करने-सुनने का साहस नहीं करेगा, शायद जंगली भी ऐसा नहीं करता। फिर हिमालय के लिये, वह भी पार्वती के विषय में! शान्तं पापं!!

पर गोस्वामीजी ने इतना ही लिखकर इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है, साथ ही औचित्य का पूरा ध्यान रक्खा है—'कुँवरि सयानि बिलोकि मातु-पितु सोचहिं, गिरिजा जोग जुरहि वर अनुदिन लोचहिं।'

महाकवि बाण एक जगह और औचित्य की सीमा लांघ गये हैं। जिन शिवजी के लिये महाकवि कालिदास लिखते हैं—'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।' गोस्वामीजी इसी सुर में सुर मिलाकर कहते हैं—'ते धीर अछत विकारहेतु जे रहत मनसिज बस किये।' बाणभट्ट के वे ही शिव पार्वती की तपः-परीक्षा लेने गये और उनकी परीक्षा लेने पर अधीर हो उनसे गंधर्व विवाह का प्रस्ताव भी किया। इसपर पार्वती की सखी ने मीठे व्यंग्यों में उनकी खूब खबर ली है। गोस्वामीजी ने इस विषय का जैसा वर्णन किया है, विज्ञ पाठक उसे ग्रंथ में ही देख लेंगे।

शिवजी देवताओं के साथ उनकी योग्यता के अनुसार ही उनसे मिलते हैं। जैसे—

> मिले हरिहि हर हरषि, सुभाषि सुरेसहि।
> सुर निहारि सनमानेउ मोद महेसहि॥

इससे पता चलता है, गोस्वामीजी को साधारण शिष्टाचार का भी

पूरा ज्ञान था। ब्रह्मचारिवर रामेश्वर ने जो लांछन लगाया था कि तुलसीदास को लौकिक शिष्टाचार का कुछ ज्ञान नहीं था, वह निर्मूल सिद्ध हो जाता है।

इसी पार्वती-मंगल की यथाशक्ति सरल भाषा में टीका लिखने की चेष्टा की गई है। गोस्वामीजी-कृत ग्रंथों में यह दूसरे ग्रंथ की टीका प्रकाशित हो रही है। पहले ग्रंथ तुलसी-सतसई की टीका पहले ही प्रकाशित हो चुकी है। आशा है, इस ग्रंथ को भी प्रेमी पाठक अपनाकर हमारा उत्साह बढ़ावेंगे।

—संपादक

पार्वती-मंगल

हंसगति-छंद

विनइ गुरुहि गुनिगनहि गिरिहि गननाथहि।
हृदय आनि सियराम धरे धनु-भाथहि॥
गावउँ गौरि-गिरीस-विवाह सुहावन।
पाप-नसावन पावन मुनि-मन भावन॥१॥

गुरु, गुणिजन, हिमालय पर्वत और गणेश के यहाँ विनयी बनकर अर्थात् इन सब की स्तुति कर तथा मन में धनुष-तरकश धारण किये सीताराम (का ध्यान) लाकर मैं पापों को नष्ट करने वाला और मुनियों का मनचाहा सुन्दर गौरी-शंकर का विवाह-(मंगल) गाता हूँ॥१॥

कवित-रीति नहिं जानउँ कवि न कहावउँ।
संकर चरित-सुसरित मनहि अन्हवावउँ॥
पर अपवाद विवाद विदूषित वानिहि।
पावनि करउँ सो गाइ भवेस-भवानिहिं॥२॥

[अपवाद = निंदा। विदूषित = अपवित्र। पावनि = पवित्र। भवेस = शिवजी।]

मैं कवित्त-रीति (कविता करने की कला) नहीं जानता और

न कवि ही कहाता हूँ; केवल शिवजी के चरित-रूप नदी में अपने मन को नहला भर लेता हूँ। दूसरों की निंदा और (दूसरों के साथ व्यर्थ) विवाद करने से अपवित्र बनी हुई सरस्वती को शिव-पार्वती (के सुयश) को गाकर पवित्र बनाता हूँ ॥२॥

जय संवत फागुन सुदि पाँचै गुरु दिन।
अस्विनि बिरचेउँ मंगल सुनि सुख छिन-छिन ॥
गुननिधान हिमवान धरनिधर-धुर धनि।
मैना तासु घरनि घर त्रिभुवन तियमनि ॥३॥

[धरनिधर-धुरधनि = पर्वतों में श्रेष्ठ।]

मैंने (इस पार्वती-मंगल) को जय नाम के संवत्सर के फागुन शुदि पंचमी बृहस्पति वार अश्विनी नक्षत्र में बनाया जिसको सुनकर क्षण-क्षण में (हरघड़ी) सुख मिलता है। पहाड़ों में श्रेष्ठ गुणवान् हिमालय हैं—उनके घर में (पितर की मानसी कन्या) मैना नाम की स्त्री हैं जो तीनों लोकों की स्त्रियों में श्रेष्ठ हैं ॥३॥

कहहु सुकृत केहि भाँति सराहिय तिन्हकर।
लीन्ह जाइ जगजननि जनम जिन्हके घर।
मंगलखानि भवानि प्रगट जबतें भइ।
तब तें रिधि सिधि सम्पति गिरिगृह नित नइ ॥४॥

जिनके घर में जगदम्बा पार्वती ने जाकर जन्म लिया, भला कहिये, उन (हिमालय) के पुण्य की बड़ाई कैसे की जाय? जब से मंगल की खान पार्वती प्रकट हुई तब से हिमालय के घर में नित्य नई ऋद्धि-तथा सिद्धि-सम्पत्ति की अभिवृद्धि होने लगी ॥४॥

हरिगीतिका छंन्द

नित नव सकल कल्यान मंगल मोदमय मुनि मानहीं।
ब्रह्मादि सुर नर नाग अति अनुराग भाग बखानहीं॥
पितु मातु प्रिय परिवार हरषहिं निरखि पालहिं लालहीं।
सित-पाख बाढ़ति चन्द्रिका जनु चन्द्रभूषन भालहीं॥५॥

[सित-पाख = शुक्लपक्ष। चन्द्रभूषन = शिवजी।]

(पार्वती के जन्म से) मुनि-गण नित्य नवीन और सम्पूर्ण कल्याण तथा आनंदमय मंगल-उत्सव मानते हैं। ब्रह्मादि देवता, मानव और नाग अत्यंत अनुराग से (हिमालय के) भाग्य की बड़ाई करते हैं। पिता, माता और प्रिय परिवार (पार्वती को) देख-देखकर आनंदित होते हैं और उनका लालन-पालन करते हैं। (पार्वतीजी दिन-दिन इस प्रकार बढ़ने लगीं) मानों चन्द्रमा की कला—जो शिवजी के मस्तक में रहती है—शुक्लपक्ष में बढ़ रही है॥५॥

हंसगति-छंद

कुँवरि सयानि विलोकि मातु-पितु सोचहिं।
गिरिजा-जोग जुरिहि वर अनुदिन लोचहिं॥
एक समय हिमवान-भवन नारद गये।
गिरिवर-मैना मुदित मुनिहि पूजत भये॥६॥

[लोचहिं = आलोचना करते हैं। जुरिहि = मिल जाय।]

राजकुमारी (पार्वती) का सयानी (युवती) देखकर (उनके) माँ-बाप (उनके विवाह के लिये) सोचते हैं और प्रति दिन इसी बात पर आलोचना करते हैं कि पार्वती के योग्य वर मिल जाय।

एक समय नारद-मुनि हिमालय के घर गये और दम्पती—हिमवान् और मैना—ने प्रसन्नता-पूर्वक मुनि का पूजन (सत्कार) किया ॥६॥

उमहि बोलि रिषि-पगन मातु मेलति भइ।
मुनि मन कीन्ह प्रनाम वचन आसिष दइ ॥
कुँवरि लागि पितु काँध ठाढ़ि भइ सोहइ।
रूप न जाइ बखानि जान जेइ जोहइ ॥७॥

माता मैना ने पार्वती को बुलाकर ऋषि नारद के चरणों में डाल दिया (अर्थात् माँ के द्वारा पार्वती ने नारद को प्रणाम किया)। मुनि ने (उन्हें जगदम्बा जानकर) मन ही-मन प्रणाम किया और वचन से (लोकाचार-वश) आशीर्वाद दिया। फिर कुमारी पार्वती अपने पिता के कंधे से लगकर खड़ी हुई सोहने लगीं। उनके रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। जिसने वह रूप देखा है, वही जान सकता है ॥७॥

अति सनेह सतिभाय पाय परि पुनि-पुनि।
कह मैना मृदु वचन सुनिय विनती मुनि ॥
तुम तिभुवन तिहुँकाल विचार-बिसारद।
पारबती अनुरूप कहिय वर नारद ॥८॥

अत्यन्त प्रेम और सद्भाव से बार-बार मुनि के पाँवों पर पड़कर मैना कोमल वाणी से कहने लगीं—"हे मुनिजी, विनती सुनिये। आप तीनों लोकों (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल) और तीनों कालों (भूत, वर्त्तमान, भविष्य) में एकमात्र विचारशील पंडित हैं। अतएव हे नारदजी, मेरी पार्वती के योग्य वर (का पता) बतला दीजिये" ॥८॥

मुनि कह चौदह भुवन फिरेउँ जग जहँ-जहँ ।
गिरिवर सुनिय सरहना राउरि तहँ-तहँ ॥
भूरि भाग तुम सरिस कतहुँ कोउ नाहिंन ।
कछु न अगम सब सुगम भयो विधि दाहिन ॥९॥

मुनि कहने लगे—"हे पर्वतराज हिमालय, हम संसार में—(भू आदि सातो स्वर्ग और अतल आदि सातो पाताल) चौदहों लोकों में जहाँ-जहाँ घूमे, वहाँ-वहाँ तुम्हारी बड़ाई सुनी। तुम्हारे समान बड़ा और भाग्यवान् कहीं कोई नहीं है। तुम्हारे लिये कुछ अगम (दुर्लभ) नहीं है—सब सुगम हैं, क्योंकि विधाता (तुम्हारे) अनुकूल हुए हैं ॥९॥

हरिगीतिका-छंद

दाहिन भये विधि सुगम सब सुनि तजहु चित चिंता नई ।
वर प्रथम बिरवा बिरँचि बिरच्यो मंगला मंगलमई ॥
बिधिलोक चरचा चलति राउरि, चतुर चतुरानन कही ।
हिमवान-कन्या-जोग बर बाउर बिबुध-बंदित सही ॥१०॥

[बिबुध = देवता । बाउर = पागल ।]

विधाता (तुम्हारे) दाहने हुए हैं—तुम्हारे लिये सभी पदार्थग सुगम हैं—यह सुन-समझकर मन से नई चिंता छोड़ो। ब्रह्मा ने इस मंगलमयी मंगला (पार्वती रूप लता के) लिये पहले ही वर-वृक्ष (वर रूपी वृक्ष वा शिवजी) बना रक्खा है। (एक समय) ब्रह्म लोक में तुम्हारी चर्चा छिड़ी थी। वहाँ चतुर ब्रह्मा ने कहा था कि हिमालय की कन्या के लिये वही पगला वर शिवजी निश्चित हैं जो देवताओं से भी पूजनीय हैं ॥१०॥

हंसगति-छंद

मोरेहु मन अस आव मिलहि वर बाउर।
लखि नारद-नारदी उमहिं सुख भा उर॥
सुनि सहमे परि पाँइ कहत भये दम्पति।
गिरिजहि लागि हमार जिवन सुख-सम्पति॥११॥

[नारदी = नारदपना।]

(कन्या के लक्षणों को देखकर) मेरे भी मन में यही आता है कि इसको पगला वर ही मिलेगा।" नारदजी का नारदपना देखकर पार्वती के मन में बड़ा सुख हुआ। यह सुनकर दम्पती — हिमालय और मैना सहम गये और मुनि के पैर पकड़कर कहने लगे—"हे मुने! हमारे जीवन की सुख-सम्पत्ति पार्वती के लिये ही है। (अर्थात् इसके लिये हम सब सुख-सम्पत्ति यहाँ तक कि प्राणों को भी न्योछावर कर सकते हैं।) ॥११॥

नाथ! कहिय सोइ जतन मिटइ जेहि दूषन।
दोष-दलन मुनि कहेउ बाल-विधु-भूषन॥
अवसि होइ सिधि साहस फलै सु-साधन।
कोटि कलपतरु सरिस संभु-अवराधन॥१२॥

[बालविधु-भूषन = बालचंद्र जिनके सिर के भूषण हैं अर्थात् शिवजी। संभु-अवराधन = महादेव की पूजा।]

हे नाथ! ऐसा यत्न बतला दीजिये कि जिससे (इस लड़की का यह) दोष मिट जाय (अर्थात् ऐसी सुंदरी और गुणवती को पगला वर न मिले) !" मुनि कहने लगे—"(पगला वर) शिवजी तो

स्वयं ही दोषों के नाशक हैं। साहस किया जाय तो साधना फलेगी और अवश्य सिद्धि प्राप्त होगी, क्योंकि महादेवजी की पूजा करोड़ों कल्पवृक्षों के समान (मनःकाम पूरा करनेवाली) है ॥१२॥

तुम्हरे आस्रम अबहिं ईस तप साधहिं।
कहिय उमहि मन लाइ जाइ अवराधहिं॥
कहि उपाउ दम्पतिहि मुदित मुनिबर गये।
अति सनेह पितु-मातु उमहि सिखवत भये॥१३॥

"तुम्हारे आश्रम में आज-कल (दक्ष-यज्ञ में सती के मर जाने से निश्चित हो) महादेवजी तपस्या करते हैं। पार्वती से कहो कि वह वहाँ जाकर और मन लगाकर उनकी पूजा करे। (इससे इसका दोष मिट जायगा और मनचाहा वर मिलेगा।)" दम्पति को यह उपाय बताकर नारद प्रसन्न-मन से चले गये। माता-पिता ने अत्यंत प्रेम से पार्वती को सिखाया-पढ़ाया (कि शिवजी के आश्रम में जाकर किस प्रकार उनकी पूजा करनी होगी।)

सजि समाज गिरिराज दीन्ह सब गिरिजहि।
बदति जननि जगदीस जुबति जनि सिरजहि॥
जननि-जनक-उपदेस महेसहि सेवहिं।
अति आदर अनुराग भगति मन भेवहिं॥१४॥

[भेवहिं = भावना करती है, लौ लगाती है।]

पर्वतराज हिमालय ने सब साज-सामान सजकर पार्वती को दे दिये। (पार्वती चलने लगीं) तब माता-मैना (रो-रोकर) कहती थीं कि हे भगवन्, अब स्त्रियों की सृष्टि मत करो। (स्त्रियों के

समान पराधीन और दुखी कोई नहीं।) बालिका पार्वती माँ-बाप के उपदेश से महादेव का सेवन करने और अत्यंत आदर-पूर्ण प्रेम से उनकी भक्ति में मन लगाने लगीं ॥१४॥

हरिगीतिका-छंद

सेवहिं भगति मन वचन करम अनन्य गति हर-चरन की।
गौरव सनेह सकोच सेवा जाइ केहि विधि बरन की॥
गुन-रूप-जौवन सींव सुंदरि निरखि छोभ न हर हिये।
ते धीर अछत विकार हेतु जे रहत मनसिज बस किये॥१५॥

[सींव = सीमा। अछत = विद्यमान। मनसिज = कामदेव।]

पार्वती शिवजी के चरणों की अनन्यगति (एकनिष्ठ) भक्ति मन, वचन और कर्म से करने लगीं। (उनके) गौरव (सम्मान का भाव), स्नेह, लज्जा और सेवा का वर्णन किस प्रकार किया जाय! गुण, रूप और यौवन-शोभा की सीमा-स्वरूपा उन सुंदरी पार्वती को देखकर भी शिवजी के मन में क्षोभ नहीं हुआ। वे ही पुरुष धीर कहलाते हैं जो विकार-जनित कारणों के रहते हुए भी कामदेव को वश में किये रहते हैं॥१५॥

हंसगति-छंद

देव देखि भल समउ मनोज बुलायेउ।
कहेउ करिय सुरकाज साज सजि धायेउ॥
वामदेव सन काम वाम होइ बरतेउ।
जग-जय मद निदरेसि हर पायेसि फर तेउ॥१६॥

[समउ = समय, अवसर। मनोज = कामदेव। बामदेव = महादेव। बाम = प्रतिकूल, टेढ़ा। निदरेसि = अपमान किया। फर = फल।]

देवताओं ने अच्छा अवसर देखकर कामदेव को बुलाया और कहा—"देवताओं का काम कीजिये।" बस वह काम सब साज-सामान सजकर (वसंतऋतु और अप्सराएँ लेकर) दौड़ पड़ा। काम ने महादेवजी से प्रतिकूलता (शत्रुता) का व्यवहार किया और संसार जीतने के घमंड से शिवजी का अपमान किया; निदान इसका फल भी पा गया अर्थात् शिवजी के क्रोधानल में जल मरा ॥१६॥

नोट—तारकासुर के त्रास से देवता मारे-मारे फिर रहे थे। ब्रह्मा ने शिवजी के पुत्र के हाथों उसका मरण निश्चित किया था। शिवजी ने समाधि लगा रक्खी थी। इसलिये देवताओं ने जगद्विजयी कामदेव को भेजा था कि वह शिवजी की समाधि तोड़े जिससे वे विवाह करें और उन्हें पुत्र हो। परन्तु कामदेव स्वयं ही जल मरा।

रति पति-हीन मलीन बिलोकि बिसूरति।
नीलकंठ मृदुसील कृपामय मूरति॥
आसुतोष परितोष कीन्ह बर दीन्हेउ।
सिव उदास तजि बास अनत गम कीन्हेउ॥१७॥

[बिसूरति=शोक करती है। नीलकंठ = शिव।]

(कामदेव के जल जाने पर) पति के विना विधवा रति (काम की स्त्री) को मलीन बनी शोक करती हुई देखकर कृपामूर्त्ति मृदु-शील शंकर, जो आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होनेवाले) शिवजी हैं,

प्रसन्न हुए। शिव ने उसे वर देकर संतुष्ट कर दिया और आप उदास हो वह स्थान छोड़कर दूसरी जगह चले गये।

उमा नेह-बस बिकल देह सुधि-बुधि गई।
कलपबेलि बन बढ़त बिषम हिम जनु दई॥
समाचार सब सखिन्ह जाइ घर-घर कहे।
सुनत मातु-पितु-परिजन दारुन दुख दहे॥१८॥

[दई = नष्ट किया। विषम = बेढब, असम। दहे = जले।]

पार्वती (शिवजी के चले जाने पर वियोग-वश) प्रेम से व्याकुल हो गईं—देह तक की सुधि-बुधि खो गई। मानों वन में बढ़ती हुई कल्पलता को पाले ने मार दिया हो। सखियों ने जाकर यह समाचार घर-घर सुनाया। सुनते ही माता (मैना), पिता (हिमालय) और परिवार को बड़ा कष्ट हुआ।

जाइ देखि अति प्रेम उमहि उर लावहीं।
बिलपहिं बाम बिधातहिं दोष लगावहीं॥
जौ न होहिं मंगल मगु सुर बिधि बाधक।
तौ अभिमत फल पावहिं स्रम करि साधक॥१९॥

(हिमालय और मैना ने परिजन के साथ) जाकर देखा और पार्वती (दुर्दैव) को अत्यंत प्रेम से छाती से लगाने लगे। वे रोने और वाम विधाता को दोष देने लगे। मंगलमय मार्ग में जो दैव बाधक न बनें तो साधक-गण श्रम करके मन-वांछित फल पा जायँ॥१९॥

हरिगीतिका-छंद

साधक-कलेस सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम को।
को सुनइ, काहि सोहाइ घर, चित चहत चंद्रललाम को॥
समुझाइ सबहि दिढ़ाइ मनु पितु-मातु आयसु पाइकै।
लागी करन पुनि अगम तपु तुलसी कहै किमि गाइकै॥२०॥

[धाम को निहोरत=घर चलने के लिये प्रार्थना करते हैं। चन्द्र-ललाम=शिव।]

सभी (परिजन) साधक के कष्ट सुना-सुनाकर पार्वती से घर लौट चलने को प्रार्थना करने लगे, परन्तु यदि मन में शिवजी का प्रेम है, तो किसको घर अच्छा लगे और (ये बातें) कौन सुने ? फिर पार्वती सबको समझा-बुझाकर तथा मन को दृढ़ कर पिता-माता से आज्ञा ले अगम (कठोर) तपस्या करने लगीं। (उनकी तपस्या का वर्णन) तुलसीदासजी गाकर कैसे करें ?

हंसगति-छंद

फिरेउ मातु-पितु परिजन लखि गिरिजापन।
जेहि अनुराग लाग चित सोइ हित आपन॥
तजेउ भोग जिमि रोग, लोग, अहिगन जनु।
मुनि-मनसहुँ तें अगमु तपहि लायेउ मनु॥२१॥

माँ-बाप गौरी की प्रतिज्ञा देखकर (घर) लौट गये। जिसके प्रेम में मन पग जाय, वही अपना सच्चा हितू है। पार्वती ने रोग के समान भोग और सर्पों के समान लोगों को छोड़ दिया और मुनियों के मन से भी अगम्य तपस्या में अपना मन लगाया। (कठोर तप करने लगीं।) ॥२१॥

सकुचहिं बसन बिभूषन परसत जो बपु।
तेहि सरीर हर-हेतु अरंभेउ बड़ तपु॥
पूजहिं सिवहि समय तिहुँ करहि निमज्जन।
देखि प्रेम ब्रत नेम सराहहिं सज्जन॥२२॥

(पार्वती के जिस कोमल) शरीर को गहने-कपड़े भी स्पर्श करते लजाते थे (उनके शरीर की बड़ी शोभा थी। गहने-कपड़ों को भी लज्जा होती थी कि हमारे छूने से भी वह शोभा घट जायगी !), पार्वती उसी शरीर से शिवजी के लिये कड़ी तपस्या करने लगीं। तीनों समय (प्रातः, मध्याह्न और सायं) में स्नान कर शिवजी को पूजने लगीं। (उनके) प्रेम-व्रत और नियम देखकर सज्जन (साधु-महात्मा उन गौरी की) बड़ाई करने लगे॥२२॥

नींद न भूख-पियास सरिस निसि बासर।
नयन नीर मुख नाम पुलक-तनु हिय-हर॥
कंद मूल फल असन कबहुँ जल पवनहिं।
सूखे बेल के पात खात दिन गवनहिं॥२३॥

(पार्वती को) नींद, भूख, प्यास इत्यादि कुछ न थी—पार्वतीजी दिन-रात बराबर (एक ही टेव से) बिताती थीं। (उनको) आँखों में (प्रेम के) आँसू, मुँह में शिव-नाम, शरीर में रोमांच और हृदय में शिव का ध्यान था (यही टेव थी)। वे कभी कंद-मूल-फल खाकर और कभी पानी या हवा पी-पीकर तथा कभी बेल के सूखे पत्ते ही चबाकर दिन बिताती थीं॥२३॥

नाम 'अपरना' भयउ परन जब परिहरे ।
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे ॥
देखि सराहहिं गिरिजहिं मुनिवर-मुनिबहु ।
अस तप सुना न दीख कबहुँ काहु कहुँ ॥२४॥

[परन (पर्ण) = पत्ता । नवल = नया । धवल = उजला । कल = सुंदर । मुनि-बहु (मुनि-वधू) = मुनियों की स्त्रियाँ]

(पार्वती ने) जब (बेल के सूखे) पत्तों को भी खाना छोड़ दिया तब (उनका) नाम 'अपर्णा' हुआ। उनकी नवीन और समुज्ज्वल (निर्मल) सुंदर कीर्ति सारे संसार में छा गई। यह देखकर मुनि और मुनि-स्त्रियाँ पार्वती की बड़ाई करने लगे कि कभी और कहीं किसीने ऐसी तपस्या न देखी, न सुनी ॥२४॥

हरिगीतिका-छंद

काहू न देख्यौ कहहिं यह तपु जोगफल फल चारि का ।
नहिं जानि जाइ न कहति चाहति काहि कुधर-कुमारिका ॥
बटु-बेष पेषन प्रेम-पन ब्रत-नेम ससिसेषर गये ।
मनसहिं समरपेउ आपु गिरिजहि बचन मृदु बोलत भये ॥२५॥

[जोगफल = योगफल, जोड़ । चारि फल = धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष । कुधर = पर्वत । बटु = ब्रह्मचारी । ससिसेषर = शिवजी ।]

सब कह रहे थे कि ऐसी तपस्या किसी ने नहीं देखी, मानों यह चारों फलों का जोड़ हो। समझ में नहीं आता और पार्वती स्वयं भी नहीं कहती हैं कि वे किसको चाहती हैं ? महादेवजी ब्रह्मचारी का वेष धरकर (गौरी के) प्रेम-प्रण और व्रत-नियम देखने

(परखने) को (गौरी-आश्रम में) गये और अपना मन पार्वती को सौंपकर आप उनसे कोमल वाणी में कहने लगे ॥२५॥

हंसगति-छंद

देखि दसा करुनाकर हर दुख पायेउ ।
मोर कठोर सुभाउ हृदय अस आयेउ ॥
बंस प्रसंसि मातु-पितु कहि सब लायक ।
अमिय वचन बटु बोलेउ सुनि सुखदायक ॥२६॥

(तप से खिन्न पार्वती की) दशा देखकर करुणामय शिवजी को बड़ा दुःख हुआ । उनके मन में यह (भाव) आया कि हा ! मेरा ऐसा कठोर स्वभाव हो गया ! (मेरे लिये इस सुंदरी ने इतने कष्ट उठाये, पर मुझ कठोर ने तो भी दया न दिखाई !) फिर ब्रह्मचारी (रूप शिव गौरी के) वंश की प्रशंसा कर तथा उनके माँ-बाप को सब प्रकार से योग्य बताते हुए अमृतमयी वाणी में बोले, जो सुनने में सुखद थे ॥२६॥

देवि करउँ कछु बिनय सो बिलग न मानब ।
कहेउँ सनेह सुभाय साँच जिय जानब ॥
जनमि जगत जस प्रगटेउ मातु-पिता कर ।
तीय-रतन तुम उपजिहु भव-रतनाकर ॥२७॥

[बिलग = छल । सुभाय = स्वाभाविक । भव-रतनाकर = संसार-समुद्र]

हे देवि ! मैं कुछ विनय करता हूँ । आप इसे छल न समझें । मैं स्वाभाविक स्नेह से कह रहा हूँ । इसे मन में सत्य समझें ।

आपने संसार में जन्म लेकर अपने माँ-बाप का यश प्रकट किया है और संसार-समुद्र में आप स्त्री-रत्न ही उत्पन्न हुई हैं ॥२७॥

अगम न जग कछु तुम्ह कहँ मोहि अस सूझइ।
बिनु कामना कलेस, कलेस न बूझइ॥
जौ वर लागि करहु तप तौ लरिकाइय।
पारस जौ घर मिलइ तौ मेरु कि जाइय? ॥२८॥

मुझे तो ऐसा दीखता है कि आपके लिये संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है? बिना किसी इच्छा के अर्थात् निष्काम व्यक्ति ही तपः-) क्लेश को क्लेश नहीं समझता। यदि वर (स्वामी) पाने के लिये तपस्या करती हैं तो यह आपका लड़कपन है, क्योंकि यदि घर बैठे पारस मिल जाय तो सुमेरु-पर्वत पर (सोना लादने) क्यों जायँ? (आपको अनायास अच्छे से अच्छा वर मिल सकता है, फिर ऐसी बात के लिये तप की क्या जरूरत?) ॥२८॥

मोरे जान कलेस करिय बिनु काजहि।
सुधा कि रोगिहि चाहहि, रतन कि राजहि॥
लखि न परेउ तप-कारन बटु हिय हारेउ।
सुनि प्रिय बचन सखी-मुख गौरि निहारेउ ॥२९॥

मेरी समझ में तो आपका इतना क्लेश उठाना व्यर्थ है। क्या सुधा (अमृत) रोगी की या रत्न राजा की चाहना रखता है? तपस्या का कारण नहीं समझ पड़ने से ब्रह्मचारी विवश हो गये थे। उनकी प्रियवाणी सुनकर पार्वती ने अपनी सखी का मुँह देखा ॥२९॥

हरिगीतिका-छंद

गौरी निहारेउ सखी-मुख रुख पाइ तेहि कारन कहा।
तप करहि हर-हित सुनि बिहँसि बटु कहत मुरखाई महा॥
जेहि दीन्ह अस उपदेस बरेहु कलेस करि बर बावरो।
हित लागि कहेउ सुभाय सौं बड़ बिषम बैरी रावरो॥३०॥

गौरी ने सखी का मुँह देखा, इसलिये सखी ने (गिरिजा का) रुख परखकर कहा—"(मेरी सखी गौरी) महादेव के लिये तप कर रही है।" यह सुनकर बटु ने बिहँसकर कहा—"यह तो और बड़ी बेवकूफी है! जिसने तुमको यह उपदेश दिया है कि इतना कष्ट उठाकर पगले वर से ब्याह करो, मैं सच्चे दिल से तुम्हारी भलाई के लिये कह रहा हूँ कि वह तुम्हारा बड़ा ही बेढब शत्रु है॥३०॥

हंसगति-छंद

कहहु काह सुनि रीझहु बर अकुलीनहि।
अगुन अमान अजाति मातु-पितु-हीनहि॥
भीख माँगि भव खाहिं चिता नित सोवहिं।
नाचहिं नगन पिसाच-पिसाचिनि जोवहिं॥३१॥

[चिता = (लाक्षणिक अर्थ) श्मशान।]

जरा कहो तो सही, तुम क्या (गुण) सुनकर ऐसे अकुलीन, निर्गुण, मान-रहित, जाति-हीन और बे माँ-बाप के वर पर रीझ गई हो! अरी! भव (शिवजी) तो भीख माँगकर खाते हैं। (घर में एक मुट्ठी अनाज तक नहीं है। फिर उनके घर ही का क्या ठिकाना?) नित्य श्मशान में सोते हैं और नंगे नाचा करते हैं,

(कपड़े तक नहीं)। पिशाच-पिशाचिनियाँ (उनके नाच को) देखा करते हैं! (श्मशान में वह नाच देखने ही कौन जायगा?) ॥३१॥

भाँग धतूर अहार छार लपटावहिं।
जोगी जटिल सरोष भोग नहिं भावहिं॥
सुमुखि! सुलोचनि! हरमुख पंच तिलोचन।
बामदेव फुर नाम काम-मद-मोचन॥३२॥

[छार = भस्म, राख। जटिल = जटाधारी। फुर = सत्य।]

(महादेवजी) भाँग-धतूर खाते हैं, भस्म मलते हैं। वे योगी, जटाओंवाले और क्रोधी हैं, उन्हें भोग तो सुहाता ही नहीं। हे सुन्दर मुख और नेत्रों वाली! (तुम्हारे मनोनीत पति) शिव के मुँह तो पाँच हैं और आँखें तीन ही! उनका असली नाम तो वामदेव (उलटा फल देनेवाला) है और वे (भोग के आधार) कामदेव के मद को नष्ट करनेवाले हैं॥३२॥

एकउ हरहि न बर-गुन कोटिक दूषन।
नर-कपाल गज-खाल ब्याल-बिष-भूषन॥
कहँ राउर गुनसील सरूप सुहावन।
कहाँ अमंगल बेषु बिसेष भयावन॥३३॥

महादेव में तो एक भी वर-गुण नहीं है—प्रत्युत करोड़ों दोष-ही-दोष हैं। नर-मुंड, हाथी का चमड़ा, सर्प और विष—बस ये ही उनके गहने हैं। कहाँ तुम्हारा गुण-शील-मय सुन्दर रूप और कहाँ उनकी विशेष डर पैदा करनेवाली अमंगलमयी सूरत! ॥३३॥

जो सोचहि ससिकलहि सो सोचहि रौरेहि।
कहा मोर मन धरि न वरिय वर बौरेहि॥
हिये हेरि हठ तजहु हठै दुख पैहहु।
ब्याह-समय सिख मोरि समुझि पछितैहहु॥३४॥

(चन्द्रमा की कला उत्तम होने पर भी शिव के मस्तक पर जाकर उनके संग से अशुभ पदार्थों की पंक्ति में आ गई।) जो चिंता चन्द्रकला के लिये की जाती है अब वही चिन्ता तुम्हारे लिये भी की जायगी। मेरा कहना मन में रक्खो, पगले वर से व्याह मत करो। दिल में टटोलकर हठ छोड़ो, हठ से दुःख पाओगी। जब व्याह का समय आवेगा (और पगले वर को देखोगी) तब मेरी शिक्षा को समझकर पछताओगी। (अफसोस कि मैंने उस ब्रह्मचारी का कहना न माना!) ॥३४॥

हरिगीतिका-छंद

पछिताब भूत पिसाच प्रेत जनेत ऐहहिं साजिकै।
जमधार सरिस निहारि सब नर-नारि चलिहहिं भाजिकै॥
गज-अजिन दिव्य दुकूल जोरत सखि हँसब मुँह मोरिकै।
कोउ प्रगट हिय कोउ कहहिं मिलवत अमिय माहुर घोरिकै॥३५॥

[जनेत = बारात। जमधार = यम की सेना। अजिन = चमड़ा। दुकूल = वस्त्र। अमिय = अमृत। माहुर = विष।]

(तुम्हें) पछतावा तो तब होगा जब (तुम्हारे वर) भूत-प्रेतों और पिशाचों की बारात सजकर आयँगे और उस बारात को यम की सेना की तरह देखकर सब स्त्री-पुरुष भाग जायँगे। (गँठबन्धन

के समय तुम्हारे) सुंदर वस्त्र का छोर गजचर्म के साथ जोड़ते समय सखियाँ मुँह फेरकर हँसेंगी। कोई प्रत्यक्ष और कोई मन में तथा कोई इस प्रकार हँसी उड़ावेगी मानों अमृत में जहर घोलकर मिला दे ॥३५॥

हंसगति-छंद

तुमहिं सहित असवार बसह जब होइहहिं।
निरखि नगर नर-नारि बिहँसि मुँह गोइहहिं॥
बटु करि कोटि कुतर्क जथा-रुचि बोलइ।
अचल-सुता मन अचल बयारि कि डोलइ॥३६॥

[असवार होइहहिं = चढ़ेंगे। बसह = बसहा = बैल। गोइहहिं = छिपावेंगे। अचल = निश्चल, पहाड़। बयारि = हवा।]

जब (तुम्हारे वर) तुम्हारे साथ बैल पर चढ़ेंगे तब नगर के स्त्री-पुरुष यह देख हँस-हँसकर मुँह छिपावेंगे।" (इस प्रकार) वे ब्रह्मचारी करोड़ों कुतर्क कर-करके जो मन में आता था, बोलते थे, परन्तु गिरिजा का निश्चल मन क्या हवा से हिल जाने वाला था ? ॥३६॥

साँचि सनेह साँचि रुचि जो हठि फेरइ।
सावन-सरित सिन्धु-रुख सूप सौं घेरइ॥
मनि बिनु फनि जलहीन मीन तनु त्यागइ।
सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ॥३७॥

सच्चे प्रेम और सच्ची अभिलाषा में जो हठ से उलटफेर करना चाहता है, वह मानों सावन-मास की नदी (की धारा) को— जो समुद्र की ओर प्रधावित रहती है—सूप से घेरना (असंभव

को संभव करना) चाहता है। मणि के बिना सर्प और जल के बिना मछली मर जाती है। जो जिससे प्रेम करता है वह उसका गुण-दोष नहीं विचारता ॥३७॥

करनकटुक बटु-बचन बिसिख सम हिय हये।
अरुन नयन चढ़ि भृकुटि अधर फरकत भये॥
बोली लखि फिरि सखिहि काँप तनु थर-थर।
आलि बिदा करु बेगि बटुहि बर बरबर॥३८॥

[बिसिख = बाण । बरबर = (बर्बर) = असभ्य ।]

ब्रह्मचारी के कर्णकटु (सुनने में कठोर) वचन ने पार्वती के हृदय में बाण के समान घात किया। (क्रोध से) उनकी आँखें लाल हो गईं, भौंहें चढ़ गईं, होंठ फड़कने लगे। (उनका शरीर) थरथर काँपने लगा और सखी की ओर घूमकर देखा। फिर कहने लगीं—"हे सखी, शीघ्र इस ब्रह्मचारी को (यहाँ से) भगाओ। यह बड़ा असभ्य (मालूम) होता है। ॥३८॥

कहुँ तिय होहिं सयानि सुनहिं सिख राउरि।
बौरेहि के अनुराग भयहुँ बड़ि बाउरि॥
दोषनिधान इसान सत्य सब भाखेउ।
मेटि को सकइ सो आँक जो बिधि लिखि राखेउ॥३९॥

[दोषनिधान = दोषों की खान, दोष-पूर्ण । इसान (ईशान) = शिवजी ।]

कहीं कोई चतुरा स्त्री मिल जायगी जो आपके उपदेश सुनेगी। (मैं तो) पगले के प्रेम में खूब पगली बन गई हूँ। (आपका उपदेश कौन सुने ?) आपने बतलाया कि शिवजी दोष-पूर्ण हैं, सब

दुरुस्त, पर जिसे विधाता ने (कपाल में) लिख दिया, उस आँक (लेख) को कौन मिटा सकता है ? ॥३॥

को करि बाद-बिबाद बिषाद बढ़ावइ।
मीठ काह कबि कहहिं जाहि जोइ भावइ॥
भइ बड़ि बार आलि कहुँ काज सिधारइ।
बकि जनि उठइ बहोरि कुजुगति सँवारई॥४०॥

अथवा कौन वाद-विवाद करके बखेड़ा बढ़ावे ? मधुर क्या है ? कवि कहते हैं कि जिसको जो पसंद आवे उसके लिये वही मधुर है। बड़ी देर हो गई, सखी इसको यहाँ से विदा कर दे और आप किसी काम से कहीं जाय जिससे यह फिर बुरी युक्तियाँ सँभारकर कुछ बक न उठे ॥४॥

हरिगीतिका-छंद

जनि कहहु कछु विपरीत जानत प्रीति रीति न बात की।
सिव-साधु-निंदक मंद अति, जो सुनत सोउ बड़ पातकी॥
सुनि बचन सोधि सनेह तुलसी, साँच अविचल पावनो।
भये प्रगट करुणासिंधु संकर, भालचन्द्र सुहावनो॥४१॥

[सोधि = परखकर।]

अब कुछ उलटा-सीधा मत कहो, तुम तो प्रीति-रीति की बात (या ककहरा) भी नहीं जानते हो। महादेव और साधु की निन्दा करनेवाला तो अत्यन्त अधम होता ही है, जो उनकी निंदा सुनता है, वह भी बड़ा पापी है।" तुलसीदासजी कहते हैं कि ये बातें सुन और (पार्वती का) सच्चा, अटल तथा पवित्र प्रेम परखकर

कृपासागर शिवजी—जिनके मस्तक पर सुन्दर चन्द्रमा हैं—प्रत्यक्ष (प्रकट) हो गये—अर्थात् ब्रह्मचारी 'शिव' बन गये ॥४१॥

हंसगति-छंद

सुन्दर गौर सरीर भूति भलि सोहइ।
लोचन भाल बिसाल बदन मन मोहइ॥
सैल-कुमारि निहारि मनोहर मूरति।
सजल नयन हिय हरषि पुलक तनु पूरति॥४२॥

(शिवजी के) सुन्दर गोरे शरीर पर भस्म भली भाँति सोह रही थी। नेत्र और मस्तक बड़े, मुँह की शोभा मन को मोहनेवाली थी। शैलपुत्री (पार्वती शिव को) सुन्दर मूर्त्ति देखकर हृदय से हर्षित हो गईं। उनकी आँखें (प्रेम से) भर आईं और उनका शरीर रोमांच से पुलकित हो गया ॥४२॥

पुनि-पुनि करइ प्रनाम न आवत कछु कहि।
देखौं सपन कि सौंतुख ससिसेखर सहि॥
जैसे जनम दरिद्र महा मनि पावइ।
पेखत प्रगट प्रभाउ प्रतीति न आवइ॥४३॥

(गौरी शिव को) बार-बार प्रणाम करने लगीं, मुँह से कुछ कहा नहीं जाता (हर्ष से गला रुक गया)। (सोचने लगीं कि) जो मैं देख रही हूँ, वह स्वप्न है या सौंतुख (प्रत्यक्ष)? क्या ये ठीक महादेव (आगे से) हैं? जैसे जन्म का दरिद्र महामणि पाता है और (धन देने का) प्रभाव भी देखता है, परन्तु विश्वास नहीं होता ॥४३॥

सफल मनोरथ भयउ गौरि सोहइ सुठि।
घर तें खेलन मनहुँ अबहिं आई उठि॥
देखि रूप अनुराग महेस भये बस।
कहत वचन जनु सानि सनेह सुधा-रस॥४४॥

[सुठि=सुन्दर।]

मनोरथ के पूर्ण होने से सुन्दरी गौरी यों सोहने लगीं, मानों खेलने के लिये घर से अभी उठ आई हों। (पार्वती का) रूप और प्रेम देखकर शिवजी (उनके) अधीन हो गये और मानों (वचनों में) स्नेह-रूपी अमृत मिलाकर कहने लगे॥४४॥

हमहिं आजु लगि कनउड़ काहु न कीन्हेउ।
पारवती तप-प्रेम मोल मोहि लीन्हेउ॥
अब जो कहहु सो करउँ बिलंब न एहि घरि।
सुनि महेस मृदु वचन पुलकि पाँइन्हि परि॥४५॥

[कनउड़=कनौड़े, दवैल, अधीनस्थ।]

हमें आजतक किसीने अधीनस्थ नहीं किया था, परन्तु इस पार्वती ने तप-प्रेम के बल से हमें खरीद लिया। अब (हे गौरी) तुम जो कहो, वह हम करें, इस समय देर नहीं करेंगे।" महादेवजी की कोमल बातें सुनकर (पार्वतीजी) पुलकित हुईं और उनके पाँवों पर गिर पड़ीं॥४५॥

हरिगीतिका-छंद

परि पायँ सखिमुख कहि जनायौ आप बाप-अधीनता।
परितोषि गिरिजहि चले बरनत प्रीति नीति प्रवीनता॥

हर हृदय धरि घर गौरि गवनी कीन्ह विधि मनभावनो।
आनंद प्रेम समाज मंगल-गान बाज बधावनो ॥४६॥

(पार्वती ने शिवजी के) पाँवों पर पड़कर सखी के मुँह द्वारा कहलाया कि मैं स्वयं अभी पिता (हिमालय) के अधीन हूँ। (शिवजी) गिरिजा को संतुष्ट कर (उनकी) प्रीति-नीति और चतुराई का वर्णन करते हुए चले। पार्वती भी मन में शिवजी को रखकर घर चलीं और मनभावनी रीतियाँ कीं। (हिमालय के घर में) आनंद और प्रेम के साज सजे और मंगल-गान तथा बधाई के बाजे बजने लगे ॥४६॥

हंसगति-छंद

सिव सुमिरे मुनि सात आइ सिर नाइन्हि।
कीन्ह संभु सनमान जनमफल पाइन्हि ॥
सुमिरहिं सकृत तुम्हहिं जन ते सुकृती वर।
नाथ जिन्हहिं सुधि करिय तिन्हहिं सम तेइ हर ॥४७॥

[मुनि सात = सात ऋषि जो सप्तर्षि कहलाते हैं। ये प्रत्येक मन्वन्तर में बदलते रहते हैं। इस वैवस्वत मन्वन्तर में कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, विश्वामित्र, वशिष्ठ, भरद्वाज और गौतम ये ही सप्तर्षि हैं। सकृत = एक बार। सुकृती = पुण्यात्मा।]

(तदनन्तर) महादेवजी ने सप्तऋषियों का स्मरण किया। उन्होंने आकर (शिव को) प्रणाम किया। महादेव ने उन्हें सम्मानित किया। अथवा महादेवजी को सम्मानित किया। इससे वे ऋषि जन्म-फल पा गये अर्थात् धन्य हो गये। (ऋषिगण बोले)—"हे स्वामिन्

महादेवजी !! जो आपका स्मरण एक बार भी करते हैं वे पुण्या-त्माओं में श्रेष्ठ समझे जाते हैं और आप स्वयं जिनकी सुधि लेते हैं (उनका तो कहना ही क्या), उनके समान वे ही हैं" ॥४७॥

सुनि मुनि-विनय महेस परम सुख पायउ ॥
कथा-प्रसंग मुनीसन्ह सकल सुनायउ ॥
जाहु हिमाचलगेह प्रसंग चलायहु ।
जौ मन मान तुम्हार तौ लगन लिखायहु ॥४८॥

मुनियों की विनती सुनकर शिवजी ने बड़ा सुख पाया और बातचीत के सिलसिले में मुनियों को (पार्वती की) सब बातें सुना दीं। (और कहा) "तुमलोग हिमालय के घर जाओ। (विवाह का) प्रसंग वहाँ चला देना। जो तुम्हारा मन मान जाय तो लग्न भी (निश्चित कर) लिखा देना ॥४८॥

अरुन्धती मिलि मैनहि बात चलाइहि ।
नारि कुसल एहि काज काज बनि आइहि ॥
दुलहिनि उमा ईस बर साधक ये मुनि ।
बनहि अवसि यह काज गगन भइ अस धुनि ॥४९॥

(वशिष्ठ की स्त्री) अरुन्धती भी मैना से मिलकर (विवाह की) चर्चा चलावेंगी। ऐसे कामों में स्त्रियाँ ही चतुर होती हैं। इससे (वहाँ भी) काम बन जायगा। (इतने ही में) ऐसी आकाश-वाणी हुई कि जहाँ दुलहिन पार्वती, दूलह महादेव और साधक (घटक) ये सातों मुनि हैं, वहाँ यह काम अवश्य ही बन जायगा ॥४९॥

भयउ अकनि आनंद महेस मुनीसन्ह।
देहिं सुलोचनि सगुन कलस लिय सीसन्ह।
सिव सौं कहि दिन ठाउँ वहोरि मिलन जहँ।
चले मुदित मुनिराज गये गिरिवर पहँ॥५०॥

[अकनि = सुनकर। कलस = घड़ा। दिन ठाउँ......जहँ = जिस दिन और जिस जगह शिवजी से फिर भेंट होगी वह निश्चित करके। 'कुमार-संभव में कालिदास ने शिवजी से सप्तर्षि-मिलन की जगह का नाम 'महाकोशी-प्रपात' लिखा है।]

(इस आकाशवाणी को) सुनकर शिवजी और मुनियों को आनन्द हुआ। सुन्दर नेत्रों वाली स्त्रियाँ सिर पर घड़े लेकर सगुन बनाने लगीं (जिससे सप्तर्षियों की यात्रा सफल हो)। सातों मुनि श्रेष्ठ शिवजी से फिर मिलने की जगह और दिन निश्चित कर चले और हिमालय के पास पहुँचे॥५०॥

हरिगीतिका-छंद

गिरिगेह गे अति नेह आदर पूजि पहुनाई करी।
घर-बात घरनि- समेत कन्या आनि सब आगे धरी॥
सुत पाइ बात चलाइ सुदिन सोधाइ गिरिहि सिखाइकै।
रिषि सात प्रातहि चले प्रमुदित ललित लगन लिखाइकै॥५१॥

(जब सप्तर्षि) हिमालय के घर पहुँचे, (तब हिमालय ने) अत्यंत प्रेम और आदर से उनकी मेहमानदारी की। घर की सभी बातें—यहाँ तक कि स्त्री और पुत्री तक—मुनियों के आगे लाकर रख दीं अर्थात् उनके प्रति हिमालय ने निश्छल भाव प्रकट किया।

सुखपूर्वक बातें चलाईं। अच्छा दिन तकवाकर, हिमालय को कह कर और मुदित चित्त से सुंदर लग्न लिखवाकर सातों ऋषि प्रातः-काल ही चले ॥५१॥

हंसगति-छंद

विप्र बृंद सनमानि पूजि कुलगुरु सुर।
परेउ निसानहिं घाउ चाउ चहुँ दिसि पुर॥
गिरि बन सरित सिंधु सर सुनइ जो पायउ।
सब कहँ गिरिवरनायक नेवति पठायउ॥५२॥

[निसान = डंका। घाउ = चोट। चाउ = आनंद।]

पहाड़ों के महाराज हिमालय ने ब्राह्मणों का सम्मान कर कुल-गुरु और देवों की पूजा की। (हिमालय के) नगर के चारो ओर डंकों पर चोट पड़ने लगीं अर्थात् बाजे बजने लगे। और पहाड़, वन, नदियाँ, समुद्र, तालाब—जहाँ जिसका नाम सुन पाया—सबको न्योता भेज दिया ॥५२॥

धरि धरि सुन्दर वेष चले हरषित हिये।
कँचन चीर उपहार हार मनिगन लिये॥
कहेउ हरषि हिमवान बितान बनावन।
हरषित लगीं सुआसिनि मंगल गावन॥५३॥

[बितान = मंडप।]

सब (गिरि-वन आदि) सुन्दर-सुन्दर वेष धर-धरकर प्रसन्न मन से सोना, वस्त्र और मणि भेंट में लिये (हिमालय-नगर को)

चले। प्रसन्न होकर हिमालय ने मंडप बनाने कहा। बस, सुआसिनि (सौभाग्यवती) स्त्रियाँ प्रसन्न होकर मंगल गान करने लगीं।५३॥

तोरन कलस चमर धुज बिबिध बनाइन्हि।
टाट पटोरन्हि छाइ सफल तरु लाइन्हि॥
गौरी-नैहर केहि बिधि कहहु बखानिय?
जनु रितुराज मनोजराज रजधानिय॥५४॥

तोरण (वंदनवार), मंगल-घट, चँवर और ध्वजाएँ ये सब अनेक प्रकार के बनाये गये। टाट रेशमी कपड़ों से छाये गये। फल-युक्त पेड़ रोपे गये। कहिये, गौरी के मैके (नैहर) का वर्णन किस प्रकार किया जाय? मानों वह वसंत और कामदेव की राजधानी ही हो॥५४॥

हरिगीतिका-छंद

जनु राजधानी मदन की बिरची चतुर बिधि और ही।
रचना बिचित्र बिलोकि लोचन बिथक ठौरहि ठौर ही॥
एहि भाँति ब्याह-समाज सजि गिरिराज-मग जोवन लगे।
तुलसी लगन लै दीन्ह मुनिन्ह महेस आनंद रंग रँगे॥५५॥

किन्हीं दूसरे ही चतुर ब्रह्मा ने मानों कामदेव की राजधानी बनाई हो। (नगर की) विचित्र रचना देख जगह-जगह पर आँखें थक कर जम जाती हैं। इस प्रकार ब्याह के साज सजकर हिमालय (शिवजी के आने की) राह देखने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं कि मुनियों ने उधर लग्न महादेवजी को दिया। वे आनन्द के रंग में रँग गये॥५५॥

हंसगति-छंद

बेगि बुलाइ विरंचि बँचाइ लगन तब।
कहेन्हि बियाहन चलहु बुलाइ अमर सब॥
बिधि पठये जहँ-तहँ सब सिव-गन धावन।
सुनि हरषहिं सुर कहहिं निसान बजावन॥५६॥

(शिवजी ने) शीघ्र ही ब्रह्मा को बुला भेजा और लग्न बँचवाकर कहा कि सब देवताओं को बुलाकर ब्याह में बारात चलने कहो। ब्रह्मा ने जहाँ तहाँ शिव के गणों को दूत बनाकर भेजा। देवता सुनकर प्रसन्न हुए और बाजे बजाने को कहा॥५६॥

रचहिं बिमान बनाइ सगुन पावइ भले।
निज-निज साज समाज साजि सुरगन चले॥
मुदित सकल सिवदूत भूतगन गाजहिं।
सूकर महिष स्वान खर बाहन साजहिं॥५७॥

देवता-गण अपने-अपने विमानों को भली-भाँति सँवारते हैं और अच्छे-अच्छे शकुन पाते हैं। वे अपने अपने साज-समान सजधज कर चले। शिवजी के भूत-प्रेतादि प्रसन्न हो-हो गरजते हैं और अपने-अपने वाहनों—शूकरों, भैंसों, कुत्तों और गधों को सजाते हैं॥५७॥

नाचहि नाना रंग तरंग बढ़ावहिं।
अज उलूक वृक नाद गीत गन गावहिं॥
रमानाथ सुरनाथ साथ सब सुरगन।
आये जहँ बिधि संभु देखि हरषे मन॥५८॥

शिवगण नाना प्रकार के अंगतरंग बढ़ा याने बना-बनाकर नाचते हैं। बकरे, उल्लू और भेड़िये की तरह बोली बोलकर गाते हैं। विष्णु और इन्द्र देवताओं के साथ वहाँ पहुँचे, जहाँ ब्रह्मा और शिवजी थे और सब बड़े खुश हुए ॥५८॥

मिले हरिहि हर हरषि सुभाषि सुरेसहि।
सुर निहारि सनमानेउ मोद महेसहि॥
बहु बिधि बाहन जान बिमान बिराजहिं।
चलीं बरात निसान गहागह बाजहिं॥५९॥

महादेवजी विष्णु से हर्षित होकर तथा इन्द्र से (कुशलादि वार्त्ता) पूछकर मिले और देवताओं की ओर देखकर ही उनका सम्मान किया। इससे शिवजी को बड़ा आनन्द मिला। अनेक प्रकार के वाहन और सवारियाँ तथा विमान सोह रहे थे। बारात सजी हुई चली। खूब जोर-शोर से बाजे बज रहे थे॥५९॥

हरिगीतिका-छंद

बाजहिं निसान सुगान नभ चढ़ि बसह बिधुभूषण चले।
बरषहिं सुमन जय-जय करहिं सुर सगुन सुभ मंगल भले॥
तुलसी बराती भूत प्रेत पिसाच पसुपति सँग लसे।
गज-छाल ब्याल कपाल-माल बिलोकि बर सुर हरि हँसे॥६०॥

आकाश में बाजे बज रहे थे। गाना हो रहा था। बैल पर चन्द्रभूषण (शिवजी) चले। देवता जय-जयकार कर फूल बरसाते थे। अच्छे और कल्याणकर सगुन हो रहे थे। तुलसीदासजी कहते हैं कि महादेव के साथ बारात में भूत-प्रेत-पिशाच गण विराज

रहे थे। हाथी की खाल, सर्प, मुंड-माल—(महादेवजी के ये साज) देख-देखकर सभी देवता और विष्णु हँस रहे थे ॥६०॥

हंसगति-छंद

विबुध बोलि हरि कहेउ निकट पुर आयेउ।
आपन आपन साज सबहिं बिलगायेउ॥
प्रमथनाथ के साथ प्रमथगन राजहिं।
विविध भाँति मुख वाहन वेष विराजहिं ॥६१॥

[प्रमथ = भूत-प्रेत ।]

जब (हिमालय के) नगर के निकट पहुँचे तब विष्णु ने सब देवताओं को बुलाकर (अपना-अपना गरोह अलग करने) कहा। सब ने अपने-अपने साज (जमात) अलग कर लिये। भूतनाथ शिवजी के साथ भूत-प्रेत सोह रहे थे। उनके भाँति-भाँति के मुँह, वाहन और वेष विराज रहे थे ॥६१॥

कमठ खपर मढ़ि खाल निसान बजावहिं।
नर-कपाल जल भरि-भरि पियहिं-पियावहिं॥
बर अनुहरत बरात बनी हरि हँसि कहा।
सुनि-हिय हँसत महेस केलि-कौतुक महा ॥६२॥

[कमठ = कछुआ । अनुहरत = समान ।]

: (भूतगण) कछुए के खप्पर में चमड़े मढ़कर बाजा बजा रहे थे और (एक दूसरे को) मनुष्यों की खोपड़ियों में पानी भर-भरकर पीते-पिलाते थे। विष्णु ने हँसकर

अनुसार ही बारात बनी है।" महादेवजी यह सुनकर हँसने लगे। (इस तरह राह में) खूब ही आमोद-प्रमोद हो रहे थे ॥६२॥

बड़ विनोद मग मोद न कछु कहि आवत।
जाइ नगर नियरानि बरात बजावत ॥
पुर खरभर उर हरष्यौ अचल-अखंडल।
परव उदधि उमगेउ जनु लखि विधुमंडल ॥६३॥

[खरभर = हलचल, शोरगुल। अचल = पहाड़। अखंडल = इन्द्र। उदधि = समुद्र। परव = पर्व, पूर्णिमा।]

राह में इतना आमोद-प्रमोद हुआ कि कुछ कहा नहीं जाता। बारात (बाजे) बजवाती हुई नगर के निकट पहुँची। नगर में हलचल मच गई। पर्वतों में इन्द्र हिमालय मन में प्रसन्न हुए। मानों समुद्र पर्व के अवसर पर चन्द्रमंडल को देखकर उमड़ पड़ा हो ॥६३॥

प्रमुदित गे अगवान विलोकि बरातहि।
भभरे बनइ न रहत न बनइ परातहि ॥
चले भाजि गज-बाजि फिरइ नहि फेरत।
बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत ॥६४॥

[भभरे = चौंके। परातहि = भागते।]

बारात आई देखकर लोग अगवानी करने को प्रसन्न होकर चले, (भयानक बारात देखकर) भड़क उठे। उनसे न वहाँ रहते बना और न भागते ही बना। हाथी-घोड़े भड़ककर भागे। लौटाने

पर भी नहीं लौटे। बच्चे भड़के, राह भुला गई—अपने-अपने घरों को ढूँढ़ने लगे ॥६४॥

दीन्ह जाइ जनवास सुपास किये सब।
घर-घर बालक बात कहन लागे तब॥
प्रेत बेताल बराती भूत भयानक।
बरद चढ़ा बर बाउर सबइ सुबानक॥६५॥

[जनवास = डेरा। सुपास = सुविधा। सुबानक = अच्छा बनाव।]

सब बारात को वासा दिया गया, सब सुविधाएँ की गईं। तब बच्चे घर-घर जाकर (बारात की) बातें कहने लगे। (अरे बापरे!) बारात में तो भयानक भूत, प्रेत और बेताल हैं। पगला वर तो बैल पर चढ़ा है, सब प्रकार से अच्छा बनाव है ॥६५॥

कुसल करइ करतार कहहिं हम साँचिय।
देखब कोटि बियाह जियत जो बाँचिय॥
समाचार सुनि सोच भयउ मन मैनहि।
नारद के उपदेस कवन घर गे नहि॥६६॥

हमलोग सच कहते हैं कि भगवान् ही (इस ब्याह में) कुशल करे! यदि बचे रहेंगे तो करोड़ों ब्याह देख लेंगे। यह समाचार सुनकर मैना के मन में सोच हुआ कि नारद की शिक्षा से कौन घर नहीं गया अर्थात् चौपट नहीं हुआ? ॥६६॥

हरिगीतिका-छन्द

बर-बाल बालक कलह-प्रिय कहियत परम परमारथी।
तैसी बरेखी कीन्हि पुनि मुनि सात स्वारथ-सारथी॥

उर लाइ उमहि अनेक बिधि जलपति जननि दुख मानई।
हिमवान कहेउ इसान-महिमा अगम निगम न जानई ॥६७॥

[चालक = चालाक, धूर्त। बरेखी = घटकैती, बरतुहारी, विवाह की बातचीत। अगम = आगम, शास्त्र, गंभीर। निगम = वेद। सारथी = साथी।]

(मैना कहने लगीं कि नारदजी) घर घाल अर्थात् घर को चौपट करनेवाले और झगड़ा लगाने के प्रेमी हैं और (तुर्रा यह कि इसपर भी) परम परमार्थी (परोपकारी संत) कहलाते हैं! स्वार्थ के संगी सातो मुनियों ने भी वैसी ही घटकैती की। माता मैना पार्वती को छाती से लगाये इस प्रकार अनेक प्रकार से रोती-कलपती दुःख पा रही थीं। हिमालय ने (समझाकर) कहा कि (अरी पगली!) महादेवजी की महिमा (तुम क्या समझोगी, उसे तो) वेद-शास्त्र भी नहीं जानते ॥६७॥

हंसगति-छंद

सुनि मैना भइ सुमन सखी देखन चली।
जहँ-तहँ चरचा चलइ हाट चौहट गली॥
श्रीपति सुरपति बिबुध बात सब सुनि-सुनि।
हँसहिं कमल कर जोरि मोरि मुँह पुनि-पुनि ॥६८॥

[सुमन = सुचित, जी में जी आना। श्रीपति = लक्ष्मी के पति, विष्णु।]

मैना सुनकर सुखी हुई। उनकी सखियाँ (वर देखने) चलीं। यह चर्चा हाट, चौराहे, गली-कूँची सब में जहाँ-तहाँ फैल गई।

विष्णु, इन्द्र आदि सब देवता ये बातें सुन-सुनकर, मुँह मोड़ और कमल समान हाथ में हाथ मिला बार-बार हँसने लगे ॥६८॥

लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर।
भै सुन्दर सत कोटि मनोज मनोहर॥
नील निचोल छाल भइ फनि-मनि भूषन।
रोम-रोम पर उदित रूपमय पूषन ॥६९॥

[सोहर = उत्सव। मनोज = कामदेव। निचोल = वस्त्र। पूषन = सूर्य।]

महादेवजी लोक-गति जान तथा बड़ा उत्सव समझकर सौ करोड़ मनोहर कामदेवों के समान सुन्दर हो गये। (हाथी का) चमड़ा नील वस्त्र बना। साँपों की मणियाँ गहने बनीं, मानों रोम-रोम पर रूपमय (सुंदर) सूर्य उग आये हों ॥६९॥

गन भै मंगल वेष मदन-मन-मोहन।
सुनत चले हिय हरषि नारि-नर जोहन॥
संभु सरद-राकेस नखत-गन सुरगन।
जनु चकोर चहुँ ओर विराजहिं पुरजन ॥७०॥

(शिवजी के) गण भी कामदेव के मन को मोहनेवाले मंगल वेषधारी बने। यह सुनकर (नगर के) स्त्री-पुरुष मन से प्रसन्न होकर देखने चले। शिवजी शरत् काल के पूर्णिमा के चन्द्रमा (से सोहते) थे और देवता तारा के ऐसे। नगर-वासी मानों चकोर बने चारों ओर से घेरे सोह रहे थे ॥७०॥

गिरिवर पठये बोलि लगन बेरा भई।
मंगल अरघ पाँवड़े देत चले लइ॥
होहिं सुमंगल गान सुमन बरषहिं सुर।
गहगह गान निसान मोद मंगल पुर॥७१॥

(तदनन्तर) हिमालय ने 'लग्न का समय आ गया' यह कहकर सबको बुला भेजा। सब (हिमालय के लोग) मंगल अर्घ्य और पाँवड़े (राह में कपड़े) बिछाते लिवा चले। मंगलमय गाने होने लगे। देवता फूल बरसाने लगे। धूमधाम से बाजे बजने लगे। नगर में आनंद छा गया॥७१॥

पहिलहि पँवरि सुसामध भा सुखदायक।
इत बिधि उत हिमवान सरिस सब लायक॥
मनि चामीकर चारु थार सजि आरति।
रति सिहाहिं लखि रूप, गान सुनि भारति॥७२॥

[पँवरि = पौरि, ड्योढ़ी। सुसामध = वर-पक्ष और कन्या-पक्ष का मिलन, समधि-मिलन। चामीकर = सोना। भारति = सरस्वती।]

पहली ही ड्योढ़ी पर सुखदायक समधियों का मिलन हुआ। इधर (वर-पक्ष में) ब्रह्माजी और उधर (कन्या-पक्ष में) हिमालय के समान सब प्रकार से योग्य थे। मणिमय सोने के सुंदर थाल में आरती सजकर (ऐसी स्त्रियाँ,) जिनके रूप देखकर रति और गीत सुनकर सरस्वती सिहाती थीं॥७२॥

भरी भाग अनुराग पुलक तन मुद मन।
मदनमत्त गजगवनि चलीं वर परिछन॥

बर विलोकि विधु गौर सुअंग उजागर।
करति आरती सासु मगन सुख-सागर ॥७३॥

भाग्य (सुहाग) से भरी, प्रेम से शरीर रोमांचित और मन प्रसन्नता से पूर्ण मतवाले हाथी के समान चलनेवाली वर को परिछने चलीं। वर का अंग चन्द्रमा के समान निर्मल गौर देख-कर सुख-समुद्र में डूबी हुई सास (मैना) आरती करने लगीं ॥७३॥

हरिगीतिका-छंद

सुख-सिंधु-मगन उतारि आरति करि निछावरि निरखिकै।
मग अरघ बसन प्रसून भरि लेइ चलीं मंडप हरषिकै॥
हिमवान दीन्हेउ उचित आसन सकल सुर सनमानिकै।
तेहि समय साज समाज सब राखे सुमंडप आनिकै ॥७४॥

सुख-सागर में डूबकर, आरती करके (वर को) देखकर निछावर दे सभी स्त्रियाँ राह का अर्घ्य (वर को) देती और कपड़े फूलों से भरकर हर्षित हो मंडप को लिवा चलीं। हिमालय ने सब देवताओं का सम्मान कर उन्हें उचित आसन दिये। उस समय मंडप में सब साज-सामान ला रक्खे ॥७४॥

हंसगति-छंद

अरघ देइ मनि आसन वर बैठायउ।
पूजि कीन्ह मधुपर्क अमी अँचवायउ॥
सपत रिषिन्ह विधि कहेउ बिलम्ब न लाइय।
लगन बेरि भइ बेगि विधान बनाइय ॥७५॥

(मंडप पर) वर को अर्घ्य देकर मणिमय आसन पर बैठाया।

पूजा कर मधुपर्क (घी, मधु और दही के मिलाने से बना हुआ रस) का विधान कर के शमी (अभिमन्त्रित जल) से आचमन कराया। ब्रह्मा ने सप्तऋषियों से कहा कि अब देर मत कीजिये, लग्न का समय आ पहुँचा। तैयारियाँ कीजिये ॥७५॥

थापि अनल हर बरहि बसन पहिरायउ।
आवहु दुलहिनि बेगि समउ अब आयउ॥
सखी सुआसिनि संग गौरि सुठि सोहति।
प्रगट रूपमय मूरति जनु जग मोहति ॥७६॥

(सप्तर्षियों ने) अग्नि की स्थापना कर वर महादेव को (वैवाहिक मंगल) वस्त्र पहनाया और कहा कि दुलहिन शीघ्र आवें। अब समय हो गया। सुहागिनी सखियों के साथ गौरी इस प्रकार फबती हैं, मानों रूपमयी मूर्त्ति प्रत्यक्ष होकर संसार को मोह रही हो ॥७६॥

भूषन बसन समय सम सोभा सो भली।
सुषमा बेलि नवल जनु रूप फलनि फली॥
कहहु काहि पटतरिय गौरि गुन रूपहिं।
सिंधु कहिय केहि भाँति सरिस सर-कूपहिं ॥७७॥

(गौरी के अंग पर) समय के अनुसार गहने-कपड़ों की शोभा ऐसी अच्छी है, मानों सुषमा की लता में रूप की फली लगी हो। कहिये, गुण-रूप में पार्वती की उपमा किससे है? यह भी बतलाइये कि समुद्र को किस प्रकार तालाबों और कुँओं के समान कहें? ॥७७॥

आवत उमहि बिलोकि सीस सुर नावहिं।
भये कृतारथ जनम जानि सुख पावहिं ॥
विप्र वेद-धुनि करहिं सुभासिष कहि-कहि।
गान निसान सुमन झरि अवसर लहि-लहि ॥७८॥

पार्वती को देखकर देवता सिर झुका-झुकाकर प्रणाम करने और जन्म को कृतार्थ (सफल) जानकर सुख पाने लगे। ब्राह्मण शुभाशीर्वचन पढ़-पढ़कर वेद-पाठ करने लगे। समय पा-पाकर गाना, बजाना और पुष्प-वृष्टि हो रही थी ॥७८॥

वर दुलहिनिहि बिलोकि सकल मन रहसहिं।
साखोच्चार समय सब सुरमुनि बिहँसहिं ॥
लोक-वेद-विधि कीन्ह लीन्ह जलकुस कर।
कन्यादान सँकलप कीन्ह धरनीधर ॥७९॥

[रहसहिं = प्रसन्न होते हैं। साखोच्चार = गोत्राध्याय। सँकलप = संकल्प। धरनीधर = पर्वत (हिमालय)।]

वर (शिव) और दुलहिनि (पार्वती) को देखकर सब मन में प्रसन्न होते हैं। गोत्राध्याय (वर-दुलहिनि के वंशावली-वर्णन) के समय सब देवता और मुनि मुसकुराते थे। हिमालय ने लोक-वेद की रीतियाँ सम्पन्न कर कुश और जल हाथ में ले कन्यादान का संकल्प किया ॥७९॥

नोट—शिवजी के गोत्राध्याय का वर्णन बंगीय कवि भारतचन्द्र ने बड़े मनोरंजक ढंग से किया है। उन्होंने शिवजी के पिता-पितामहों के नामों में शिवजी के ही एक-एक नाम गिना दिये हैं।

पूजे कुलगुरु देव कलस सिल सुभ घरी।
लावा होम-विधान बहुरि भाँवरि परी॥
बंदन बंदि ग्रंथि-विधि करि ध्रुव देखेउ।
भा विवाह सब कहहिं जनमफल पेखेउ॥८०॥

शुभ मुहूर्त में कुलगुरु, कुलदेवता, कलश और शिला की पूजा हुई। लावा छींटने तथा होम का विधान हुआ। फिर भाँवरियाँ फिरने लगीं (वर-कन्या ने मंडप की प्रदक्षिणा की)। वंदनवार की वंदना हुई। ग्रंथि-विधि (गँठबंधन) हुई। ध्रुव तारा के दर्शन (वर कन्या को) कराये गये। (इस प्रकार गौरी-शंकर का) विवाह हो गया। सब कह रहे थे कि जन्म लेने का फल (हमको) मिल गया॥८०॥

हरिगीतिका-छंद

पेखेउ जनम-फल भा बियाह उछाह उमँगहि दस दिसा।
नीसान गान प्रसून झरि तुलसी सुहावनि सो निसा॥
दाइज बसन मनि धेनु धन हय गय सुसेवक सेवकी।
दीन्हीं मुदित गिरिराज जे गिरिजहिं पियारी पेब की॥८१॥

[दाइज = दहेज। सेवकी = दासी। पेव = प्रेम।]

सब ने जन्मफल पाया। विवाह हो गया। दसों दिशाओं में उत्साह-आनंद उमड़ पड़ा। तुलसीदासजी कहते हैं कि बाजे, गीत और फूलों की वर्षा से वह रात सुहावनी बन गई। दहेज में हिमालय ने कपड़े, मणि, गायें, धन, घोड़े, बैल, दास और दासी तथा वे पदार्थ भी दिये जो गौरी को (बचपन से) प्यारे थे॥८१॥

हंसगति-छंद

बहुरि बराती मुदित चले जनवासहिं।
दूलह दुलहिनि गे तब हास-अवासहिं ॥
रोकि द्वार मैना तब कौतुक कीन्हेउ।
करि लहकौरि गौरि-हर बड़ सुख दीन्हेउ ॥८२॥

[हास-अवास = हँसी-दिल्लगी का घर, कोहबर का घर। लहकौरि = वर-कन्या को खीर खिलाना, घी-बतासे का कौर।]

फिर (ब्याह सम्पन्न होने पर) बारात के लोग प्रसन्न हो जनवासे को चले। तब वर और कन्या कोहबर घर को गये। तदनन्तर मैना ने दरवाजा रोककर कौतुक किया और लहकौरी की विधि कर गिरिजा-शंकर को बड़ा आनंद दिया ॥८२॥

जुआ खेलावत गारि देहिं गिरिनारिहिं।
अपनो ओर निहारि प्रमोद पुरारिहिं ॥
सखी सुआसिंनि सासु पाउ सुख सब बिधि।
जनवासहि वर चलेउ सकल मंगलनिधि ॥८३॥

(वर और कन्या के) जुआ खेलने के समय मैना को गालियाँ दी जाने लगीं। अपनी ओर देखकर शिवजी को बड़ा आनंद हुआ (कि अच्छा हुआ कि हमारे माँ नहीं हुई, नहीं तो आज उन्हें ही गालियाँ मिलतीं!)। सास और सुहागिनी सखियों ने सब प्रकार सुख पाया। सम्पूर्ण कल्याणों की खान वर महादेवजी जनवासे को चले ॥८३॥

भइ जेवनार बहोरि बुलाइ सकल सुर।
बैठाये गिरिराज धरम-धरनी-धुर॥
परुसन लगे सुआर बिबुधजन जेवहिं।
देहिं गारि बर नारि मोद मन भवेहिं॥८४॥

[जेवनार = रसोई। परुसने लगे = परोसने लगे। सुआर = रसोइया। भेवहिं = अनुभव करते हैं।]

रसोई तैयार हो गई। फिर सब देवताओं को बुलाकर धर्म की धरणी (पृथ्वी) को धारण करनेवाले हिमालय ने बैठाया। रसोइये परोसने लगे। देवता गण खाने लगे। श्रेष्ठ स्त्रियाँ गालियाँ (डहकन) गाने लगीं। सब मन में प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे॥८४॥

करहिं सुमंगल गान सुघर सहनाइन्ह।
जेइ चले हरि दुहिन सहित सुर-भाइन्ह॥
भूधर भोर बिदा कर साज सजायउ।
चले देव सजि जान निसान बजायउ॥८५॥

[दुहिन (द्रुहिण) = ब्रह्मा। सहनाइन्ह = शहनाइयाँ। सुरभाइन्ह = देवबन्धु।]

सुघड़ शहनायाँ बजा-बजाकर मंगल गान किये जा रहे थे। विष्णु और ब्रह्मा सभी देव-बन्धुओं के साथ (जनवासे को) चले। भोर (प्रातः) होने पर विदाई का सामान किया गया। देवता सवारियाँ सज-सज बाजे बजाते हुए चले॥८५॥

सनमाने सुर सकल दीन्ह पहिरावनि।
कीन्हि बड़ाई विनय सनेह सुहावनि॥
गहि सिव-पद कह सासु विनय मृदु मानवि।
गौरि सजीवन मूरि मोरि जिय जानवि॥८६॥

(हिमालय ने) सब देवताओं को सम्मान-पूर्वक बिदाई में कपड़े दिये। सब ने उनकी नम्रता और सुंदर प्रेम की बड़ाई की। सास मैना ने महादेवजी के पैर पकड़कर कहा—"आप मेरी नम्र प्रार्थना मानेंगे। आप मन में समझेंगे, कि गौरी मेरी (मैना की) जीवनमूरि (संजीवनी बूटी) है। (इसी दृष्टि से इसे देखेंगे।) ॥८६॥

भेंटि बिदा करि बहुरि भेंटि पहुँचावहिं।
हुँकरि-हुँकरि सुलवाइ धेनु जनु धावहिं।
उमा मातु मुँह निरखि नयन जल मोचहिं।
नारि-जनम जग जाय सखी कहि सोचहिं॥८७॥

[लवाइ = नई ब्याई। मोचहिं = छोड़ती हैं। जाय = व्यर्थ।]

(मैना गौरी को) मिलकर विदा करने लगीं और फिर भेंट कर पहुँचाने चलीं। मानों नई ब्याई गाय हुँकर-हुँकर कर (बछड़े के पास) दौड़ती है। पार्वती भी माता का मुँह देख-देखकर आँसू बहाती थीं। सखियाँ यही कहकर सोचती थीं—"संसार में स्त्री का जन्म व्यर्थ है" ॥८७॥

भेंटि उमहि गिरिराज सहित सुत परिजन।
बहु समुझोइ बुझाइ फिरे बिलखित मन॥

संकर-गौरि-समेत गये कैलासहिं ।
नाइ-नाइ सिर देव चले निज बासहिं ॥८८॥

हिमालय अपने पुत्र (मैनाक) और परिवार के साथ पार्वती से मिल, (उन्हें) बहुत-तरह से समझा बुझाकर दुःखित मन से (घर) लौटे । महादेवजी पार्वती के साथ कैलास गये । देवता-गण भी (गौरी-शंकर को) प्रणाम कर अपने-अपने घर चले गये ॥८८॥

उमा-महेस-बियाह-उछाह भुवन भरे ।
सब के सकल मनोरथ बिधि पूरन करे ॥
प्रेम-पाट-पट डोरि गौरि-हर-गुन-मनि ।
मंगल हार रचेउ कवि-मति-मृगलोचनि ॥८९॥

[पाट = रेशम । पट = वस्त्र ।]

गौरी-शंकर के विवाह का आनंद सम्पूर्ण संसार में भर गया । (इस विवाहोत्सव से) विधाता ने सब के मनोरथ पूरे किये । कवि (तुलसी) की बुद्धिरूपी मृगनयनी स्त्री ने शिवजी के गुणरूप मणियों को गूँथकर यह मंगलमय हार बनाया है ॥८९॥

हरिगीतिका-छंद

मृगनयनि बिधुबदनी रचेउ मनि मंजु मंगल हार सो ।
उर धरहु जुबती जन बिलोकि तिलोक-सोभा-सार सो ॥
कल्यान-काज-उछाह ब्याह सनेह सहित जो गाइहैं ।
तुलसी उमा-संकर प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहैं ॥९०॥

(उसी कवि-बुद्धि रूपी) मृगनयनी चन्द्रमुखी स्त्री ने सुंदर

मणियों से मंगलमय हार—जो त्रिलोक की शोभा का सार रूप है—बनाया है। इससे हे नारियो (युवतीजनो)! इस हार को हृदय में धारण करो। तुलसीदासजी कहते हैं, जो इस कल्याणकर विवाह का उत्साह प्रेम से गावेंगे, वे गौरी-शंकर की कृपा से मन में आनंद और अपना अभीष्ट पदार्थ पा लेंगे ॥९०॥

॥ इति शम् ॥